VISHVA–JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2021 TO 31.12.2023)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

72वां वर्ष, अंक 10, जनवरी, 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

NEW DELHI

ISSN 0505-7523

प्रकाशक
विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)
(अभिनिर्देशित पत्रिका)
(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606
संचालक (निवास) : 01882–244750
E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,
vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com
मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७२ होश्यारपुर, मार्गशीर्ष, २०८०; जनवरी २०२४ संख्या-१०

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषां, त्वं नो गोपाः परिपाहि विश्वतः।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत्॥

(अथर्व. ५,३,२)

हे अग्नि देव! शत्रुओं के कोप (से भरे आक्रमण) को पीछे धकेलते हुए तुम हमारे रखवारे बन कर सब ओर से हमारी रक्षा करो। हमारी हानि चाहने वाले नीचे धकेले जा कर दूर भागें। (जब वे अपने) घर पर (भी अनिष्ट-चिन्तन करते हुए) जागें, तो उन की चिन्तन-शक्ति विनष्ट हो जाए।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

यं हि न व्यथयन्त्य् एते पुरुषं पुरुषर्षभ।
सम-दुःख-सुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

(गीता. २.१५)

हे पुरुषों में श्रेष्ठ (अर्जुन), जिस भी पुरुष को ये (इन्द्रियों के विषय-गत संसर्ग) चलायमान नहीं कर पाते, और जिस धीर (पुरुष) को सुख-दुःख सम (प्रतीत होने लग जाते) हैं, वही (पुरुष) अमृत-पद को पा सकता है।

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री राजेन्द्र निगम	डॉ. सत्यव्रत शास्त्री प्रणीत 'श्रीरामकीर्ति-महाकाव्यम्' के गुजराती अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर	लेख	७
श्री विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	भारत में हिन्दी भाषा के प्रथम एम्.ए. और पी-एच.डी. डॉ. नलिनी मोहन सान्याल	लेख	११
श्री सत्यदेव सिंह	हमारा नेता कैसा हो? वेददृष्टि	लेख	१३
डॉ. रामनारायण शास्त्री	यजुर्वेद में प्राप्त ईश्वरवाचक कतिपय नाम	लेख	२०
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	सत्संग की महिमा	लेख	२७
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	नैतिक पतन का जिम्मेदार कौन ?	लेख	२९
डॉ. कन्हैया लाल पाराशर	राष्ट्र का मुखिया कौन ?	लेख	३१
श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव	पुलित्तर पुरस्कार प्रणेता	लेख	३५
सुश्री उषा किरण	महाकवि कालिदास के नाटकों में परिचारिकाओं (दासियों) का जीवन	लेख	३७
श्री किशेर राय	रामचरितमानस में राम राज्य की संकल्पना	लेख	४२
श्री अखिलेश निगम	मंगलमय नव वर्ष		४७
सुश्री स्नेह लता	नारी	कविता	४८
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा	मोक्ष	कहानी	
	संस्थान-समाचार		५२
	पुण्य-पृष्ठ		५३-५४

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री प्रणीत 'श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्' के गुजराती अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर

- राजेन्द्र निगम

'श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्' संस्कृत के अध्येता डा. सत्यव्रत शास्त्री का सृजन है। इस संस्कृत काव्य में एक विदेशी भाषा थाई में प्रचलित रामकथा को आधार बनाया गया है। डॉ. शास्त्री के प्रयासों से सिल्पाकोर्न (शिल्पकार) विश्वविद्यालय, थाईलैंड में संस्कृत अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई थी। वे थाईलैंड १९८९ में गए थे। वे जर्मनी, कनाडा व बेल्जियम के विश्वविद्यालयों में भी संस्कृत अध्ययन को अधिक व्यवस्थित बनाने के लिए वहाँ जा चुके हैं। वहाँ जाने पर उनकी दृष्टि वहाँ की रामकियन नाम से प्रचलित रामकथा पर पड़ी। थाईलैंड जिसे प्राचीनकाल में श्यामदेश कहते थे, की रामकथा भारत व किसी भी देश में प्रचलित रामकथा से पूरी तरह भिन्न है। अत: सर्वप्रथम इस संबंध में उन्होंने उनके एक घनिष्ठ सहयोगी को लिखा और उसमें उन्होंने कुछ प्रसंगों का वर्णन किया और इस तरह इस महाकाव्य का आरंभ हुआ। फिर तो काव्य की नदी का प्रवाह बह निकला। इस महाकाव्य में कुल ११२९ श्लोक हैं, जो २५ सर्ग में समाहित हैं।

इसकी लोकप्रियता का अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि मूल संस्कृत में लिखी गई इस पुस्तक का अनुवाद हिंदी, कन्नड, असमिया, तेलुगु, तमिल, मलयालम, उडिया व गुजराती भाषाओं में हुआ है। इन भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इसका अनुवाद विदेशी भाषाओं थाई, अँग्रेजी व फ्रेंच में भी हुआ है। इस पुस्तक को देश-विदेश के दस से अधिक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। डॉ. शास्त्री को वर्ष २००६ में संस्कृत भाषा में साहित्यिक योगदान के लिए **ज्ञानपीठ पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। संस्कृत भाषा में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने वालों मे वे सर्वप्रथम साहित्यकार हैं। उन्होंने दिल्ली में संस्कृत के आचार्य के रूप में भी काम किया था। इस पुस्तक का गुजराती भाषा में अनुवाद शामलाजी (गुजरात) के बी.आर.कटारा आर्ट्स कॉलेज के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डॉ. मधुसूदन व्यास के द्वारा संपन्न हुआ। डॉ. व्यास का भी गुजराती व संस्कृत भाषाओं में दीर्घ साहित्यिक योगदान रहा है। प्रत्येक श्लोक के नीचे सरल गुजराती में उसका अनुवाद दिया है। गुजराती के प्रसिद्ध नाट्यकार पीयूष भट्ट की इस विषय पर एक नृत्य-नाटिका तैयार करने की योजना है।

थाईलैंड में डॉ. शास्त्री के अध्यापन के दौरान थाईलैंड की राजकुमारी महाचक्री सिरींधोर्न उनकी छात्रा रही हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार उनके ही करकमलों से दिया गया था। यही नहीं राजकुमारी ने इस पुस्तक के सभी अनुवादकों को, जिनमें गुजराती अनुवादक डॉ. व्यास भी शामिल थे, उन्हें सितंबर, २०१३ में बैंकाक में सम्मानित

किया गया था।

थाईलैंड की रामकथा भारत व अन्य भागों में प्रचलित रामकथा से पूरी तरह भिन्न है। सबसे पहले रत्नकोशिन (१७८२-१८०९) अर्थात् राम-प्रथम के युग में उन्होंने थाई भाषा में रामकियन को करीब दस हजार पद्यों में प्रस्तुत किया था। फिर बाद में राम द्वितीय (१८०९-१८२४) में उसे संक्षिप्त किया, जिससे उसका नाटक रूप में मंचन हो सके। बाद में राम-षष्ट (सन १९१०-१९२५) ने रामकियन को उस रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें उसके मूल से लेकर तब तक के विकास को दर्शाया गया था। उनके अनुसार रामकियन में विभिन्न स्रोतों से सामग्री ली गई, जैसे कि विष्णुपुराण, अनुमाननाटक आदि।

वहाँ के शिक्षित लोग मानते हैं कि रामकथा मूलरूप से भारत की है, लेकिन अशिक्षित लोग वैसा नहीं मानते हैं, वे तो मानते हैं कि राम-सीता का जन्म वहीं थाईलैंड में हुआ था और राम-रावण का युद्ध भी वहाँ हुआ था और अयोध्या नामक नगरी भी वहीं कहीं स्थित है और संजीवनी पर्वत भी वहीं पर है।

इस अनुवादित पुस्तक को पढ़ने पर कई विभिन्नताओं के बारे में मता चलता है।

वहाँ की रामकथा के अनुसार रावण का पूर्वजन्म में नंदक नाम था और कैलाश प्रर्वत पर वहाँ के देव-समूह में देवों का विनोद करता था। वहाँ वह दीन-हीन दशा में था अत: उसने शिव की प्रार्थना की कि उसे वे वरदान देवकर उपहास का पात्र बनने से बचाएँ। उन्होंने भगवान् से माँगा कि वह जिसकी ओर भी उँगली से निर्देश करे, उसकी मृत्यु हो जाए। महेश्वर ने 'तथास्तु' कहा।

वह फिर कैलाशपर्वत पर आया। देवों को मालूम नहीं था, इसलिए वे पूर्ववत व्यवहार करते रहे। वह जिस देव की ओर भी उँगली से इशारा करता था, उसकी मृत्यु हो जाती थी। देव भयभीत हुए और तब शिव ने विष्णु को कहा कि देवों को बचाएँ। इसलिए विष्णु ने अप्सरा (मोहिनी) का रूप धारण कर नंदक को सम्मोहित किया और नंदक कामवश हुआ और उसने संयोग की इच्छा व्यक्त की और विष्णु (मोहिनी) उसके साथ नृत्य करने लगे और उसने उसकी उँगली उसकी ओर की। नंदक ने मोहिनी का अनुसरण किया और विकलांग बन गया और यह देखते ही विष्णु ने वध का निश्चय किया।

तब उसे लगा कि उसके साथ हरि ने छल किया है। अत: उसने नारायण को कहा कि उसके साथ उचित नहीं किया गया है। तब उन्होंने कहा कि इस समय यही उचित था व साथ ही यह भी कहास कि अगला जन्म तुम्हारा दशमुख के साथ होगा और मैं मानव जन्म के रूप में अवतरित होऊँगा। फिर तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा और तुम्हें यमधाम में पहुँचा दूँगा। इसके बाद वह लंका का शासक बना।

सीता के जन्म के बारे में भी थाईलैंड में कुछ अलग कथा है। रावण की अनेक रानियों में मंदोदरी उसे अति प्रिय थी। एक बार पिंडों की सुगंध सब ओर फैली हुई थी, तब मंदोदरी ने पति को कहा कि वह इन पिंडों को खाना चाहती है। तब रावण ने व्यवस्था की और पिंडों का आधा भाग मँगाया गया। उन पिंडों को खाने से मंदोदरी ने एक विचक्षण कन्या को जन्म दिया, जिसने जन्म के तुरंत बाद तीन बार कहा, 'रावण को मार

डालो', लेकिन उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। विभीषण सहित कई ज्योतिषियों ने उसका भविष्य देखा और बताया कि इस कन्या के द्वारा दशानन के कुल का सर्वनाश हो जाएगा। यह सुनकर भयभीत रावण ने विभीषण को कहा कि हे भाई ! इस कन्या का जो करना हो करें। विभीषण ने कन्या को घड़े में रखा और उसे नदी में बहाने के लिए दे दिया। विभीषण के आदेश से घड़े को नदी में फेंका, लेकिन नदी उसे नहीं डुबा सकी। वह कन्या लक्ष्मी का अवतार थी, इसलिए उसमें सुगंधित कमल प्रकट हुआ और उस के आश्रय से घड़ा नदी के जल में स्थिर रहा। बाद में वह कुंभ पद्मासन पर बैठे किसी योगी जैसे तट पर आ गया। वहाँ ऋषिवेश में राजा जनक तप कर रहे थे और वे स्नान के लिए तट पर गए और वहां उन्होंने पद्म के आधार पर घट देखा। उत्सुकता से उन्होंने वह घट खोला और उसमें एक सद्य:प्रसूता कन्या को देखा। राजा को बोध हो गया कि यह लक्ष्मी हैं, जो पृथ्वी पर आई है और इसीलिए बंद घड़े में भी वह जीवित रहीं। राजा उस कुंभ को लेकर वन में गए। फिर एक वृक्ष के मूल में गड्ढा खोदा और सब देवों से निवेदन किया कि यह कन्या केशवप्रिया बने। उस कुंभ को पद्म पर रख कर कन्या की कुशलता के लिए देवताओं को मनाने के बाद वे अपने तप के लिए लौट आए।

राजा को अपने राज्य में लौटने की इच्छा हुई अत: उन्हें घड़े की याद आई। उन्होंने एक दास को आदेश दिया कि जाओ और वृक्ष के मूल को खोदो और उसमें जो घड़ा मिलेगा, उसे ले आना। आज्ञाकारी सेवक ने वैसा ही किया, लेकिन उसे घड़ा नहीं मिला, इसलिए वह म्लान, मुख लिए राजा के पास आया और तब राजा ने कहा कि मिथिला नगरी जाओ और हल, कुदालियाँ और खुदाई के लिए सज्ज सैनिकों को वहाँ से ले आओ। बहुत देर तक भूमि-खनन का काम चला, लेकिन कुंभ नहीं मिला, अत: राजा स्वयं ज़मीन की जुताई के लिए हल लेकर तैयार हो गए। फिर कुंभ प्रकट हो गया और देखा तो उस कुंभ में कमल के साथ एक रूपवान षोडशी कन्या थी। अत्यंत सौन्दर्यवान व दीर्घ नेत्रोंवाली उस कन्या को देखकर सब विस्मित हो गए। चूँकि यह कन्या हल चलाने से मिली थी, इसलिए उस कन्या का नाम सीता रखा और उस कन्या के पिता के रूप में जनक प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकार सीता के अवतरण की यह कथा हमारे देश में प्रचलित कथा से भिन्न है। फिर बाद में सीता का स्वयंवर, कैकई का दशरथ से वरदान माँगना, राम का वन के लिए प्रस्थान के वर्णन करीब-करीब रामायण जैसे ही हैं।

रावण की बहन शूर्पणखा की कहानी में भिन्नता अधिक नहीं है। लंका-दहन में अवश्य भिन्नता है। इसमें रामसेना के भेद मालूम करने के लिए रावण एक गुप्तचर को भेजता है, लेकिन वह विभीषण व हनुमान की चतुराई से पकड़ में आ जाता है। बाद में रावण स्वयं भी साधु वेश में गुप्तचरी के लिए जाता है, लेकिन निराशा हाथ लगती है।

हमारे यहाँ हनुमानजी ब्रहमचारी हैं, लेकिन थाईलैंड की कथाओं में ऐसा नहीं है। विभीषण की पुत्री जो सीता के वेश में राम का अहित करने के लिए आती है, उसे पकड़ लिया जाता है और

फिर राम की आज्ञा से हनुमान उसे लंका छोड़ने के लिए जाते हैं और इस बीच पारस्परिक आकर्षण के कारण हनुमान उससे विवाह भी कर लेते हैं और कुछ समय वे लंका में रहते भी हैं। वहाँ की रामकियन में सेतुबंध की कथा में कई आकर्षक मोड़ हैं। जिसमें हनुमान व नील दोनों को राम दंडित भी करते हैं। सेतुबंध के निर्माण के दौरान रावण अपनी पुत्री स्वर्णमत्स्या को काम सौंपते हैं कि वह सागर की मछलियों के द्वारा रामसेना द्वारा फेंकी शिलाओं को छिन्न-भिन्न कर दें। हनुमान उस मत्स्यकन्या को यह काम करते हुए पकड़ लेते हैं और बांद में वे उससे विवाह भी रचा लेते हैं और उससे एक पुत्र की प्राप्ति भी उन्हें होती है, जिसका नाम मच्छानु होता है। हनुमान की बहादूरी के कई विचित्र किस्से इस रामकथा में हैं, जो हमारे यहाँ प्रचलित नहीं है।

कुंभकर्ण जन्म से राक्षस था, लेकिन कर्म से वह असुर नहीं था। कुंभकर्ण की कँथा विस्तृत है और हमारे यहाँ जो प्रचलित है, उससे कुछ भिन्न है। लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान जी वही औषधि लाते हैं, जो आवश्यक थी, वे पूरा पहाड़ नहीं लाते हैं।

यहाँ की कथा में रावण ब्रह्मा के पास जाते हैं, जिससे वे राम-रावण विवाद में मध्यस्थता करें और ब्रह्मा मध्यस्थता करते भी है और वे रावण को दोषी बताते हैं। राम-रावण युद्ध की कथा में भी कुछ अंतर है। रावण की आत्मा को एक पिंजरे में बताया जाता है, जो उसके गुरु के पास रहता है। हनुमान इस पिंजरे को बहुत होशियारी से अपने आधिपत्य में लेते हैं। उसका वर्णन बहुत रोचक हैं।

हमारे यहाँ सीता की अग्नि-परीक्षा की कहानी है। लेकिन यहाँ सीता पूरी तरह से राम से अलग हो जाती है, उसका बहुत सुंदर वर्णन है। शूर्पणखा की पुत्री अतुला एक चाल चलती है और उससे राम को सीता के चरित्र पर संदेह हो जाता है और वे सीता के वध की आक्षा दे देते हैं। सीता किसी तरह बच जाती हैं और वे व्रजमुनि के आश्रम में रहती हैं, जहाँ उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति होती है। स्थिति कुछ ऐसी निर्मित होती है कि मुनि एक मूर्ति में भी प्राणप्रतिष्ठा करते हैं, जिसमें से एक और वैसा ही बालक प्राप्त होता है। बाद में संयोगवश बालकों का व सीता का आमना-सामना राम से होता है। तब राम को अपनी गलती पर ग्लानि होती है और वे बच्चों वे सीता को अयोध्या ले जाने का भरपूर दबाव बनाते हैं, लेकिन सीता बच्चों को अयोध्या भेज देती है, लेकिन स्वयं अयोध्या जाने के लिए पूर्ण रूप से इंकार कर देती है और पाताल में समा जाती हैं।

भारत व थाईलैंड के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक संबंध बहुत प्राचीन हैं और इन संबंधों को अब और भी अधिक सशक्त बनाया जाना चाहिए, जो दोनों देशों के लिए लाभप्रद हों और यह पुस्तक उन्हीं प्रयासों में से एक है।

- 10-11, श्री नारायण पैलेस सोसायटी, शेल पेट्रोल पम्प के समाने, झायडस हॉस्पिटल रोड, थलतेज, अहमदाबाद - 380059

भारत में हिन्दी भाषा के प्रथम एम्.ए. और पी-एच.डी. डॉ. नलिनी मोहन सान्याल

- विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

उल्लेखनीय है कि २४ जनवरी, १८५७ ई. को अलक्जेंडर डफ द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना हुई जो आधुनिक भारत के तीन विश्वविद्यालयों में से एक है।

३ फरवरी, १८८२ ई. को गठित इंडियन एडुकेशन कमीशन ने भारत के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के लिए एक पाठ्यक्रम का सुझाव दिया। सन् १९०१ में बंगाल में हिन्दी भाषी छात्रों के लिए श्री विशुद्धानन्द स्कूल कलकत्ता की स्थापना कतिपय शिक्षानुरागियों के प्रयास से हुई। इसमें हिन्दी भाषा साहित्य का प्रथम भाषा के रूप में अध्ययन आरम्भ हुआ। २१ मार्च, १९०४ ई. के यूनिवर्सिटी एक्ट के अनुसार एम.ए. के पाठ्यक्रम में एक मातृभाषा को सम्मिलित किया गया। १७ मार्च, १९१५ ई. को इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल ने प्रस्ताव पारित किया कि माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं में मातृभाषा को माध्यम बनाया जाए और अंग्रेजी को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाए।

उन्हीं दिनों कलकत्ता (अब कोलकाता) उच्च न्यायलय के विद्वान् न्यायाधीश शिरोमणि (बंगाल टाइगर) सर डॉ. आशुतोष मुखर्जी, एम्.ए. (त्रय), डी.एस.सी., एल.एल.डी. कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति (वाइस चॉसलर) थे। सन् १९१९ ई. में उन्हीं के प्रयास से कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्यक्रम का समावेश हुआ। महामहोपाध्याय श्री सकल नारायण शर्मा और आचार्य ललिता प्रसाद सुक्ल ने सुदीर्घ काल तक इस विश्वविद्यालय को अपनी सेवायें अर्पित की।

पुनः सन् १९२१ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी में भी एम.ए. की परीक्षा देने का नियम जारी हुआ। बंगला भाषी नलिनी मोहन सान्याल ५८ वर्ष की उम्र में हिन्दी (स्नातकोत्तर) में दाखिला लिया और ६० वर्ष की उम्र में हिन्दी में प्रथम श्रीणी में सर्वप्रथम हो- एक सौ रूपये का स्वर्णपदक और दो सौ रूपये मूल्य की पुस्तकों से पुरस्कृत होकर बंगभूमि का मुखोज्ज्वल किया। सान्याल जी सन् १९२१ में हिन्दी में पहला एम.ए. होने का गौरव पाने वाले थे। बाद में उन्होंने ८२ वर्ष की आयु में अध्ययन के नैरन्तर्य से चिन्तन का विकास हुआ और उन्होंने हिन्दी में पी-एच.डी. भी की।

हिन्दी में एम.ए. और पी-एच. डी की उपाधि के बाद डॉ. सान्याल को कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर

(सीनियर प्रोफेसर) नियुक्त किया गया था।

अब पाठकों के अक्ष के समक्ष हिन्दी भाषा के प्रथम एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने वाले बंगला भाषा भाषी डा. नलिनी मोहन सान्याल जी का संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत है।

बंगाल के नदिया जिले के शांतिपुर में ३ अक्टूबर १८६१ ई. आश्विन महीने की पूर्णिमा के दिन नलिनी मोहन सान्याल का जन्म हुआ।

आपने सन् १८७७ में आगरा कॉलेज से एण्ट्रेंस परीक्षा पास की। सन् १८८० में पटना कॉलेज से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस प्रांत में रहने के समय आपने हिन्दी, उर्दू, फारसी और कुछ-कुछ अरबी भी सीखी थी। सन् १८८४ में कलकत्ता के मेट्रोपोलिटन इन्सटिट्यूशन से बी.ए. पास किया। इसी कॉलेज से आपने १८८५ में एम. ए. भी पास किया। आपने सर्वप्रथम मुजफ्फरपुर (बिहार) में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था। पुनः आप कलकत्ता चले गये।

डॉ. सान्याल जी लिखित हिन्दी पुस्तकों की सूची इस प्रकार है-

आपने जहाँ सर्वप्रथम हिन्दी में भाषा विज्ञान की पुस्तक लिखने की पहल की थी वहाँ 'सूर साहित्य की उपादेयता' पर भी साधिकार लिखा। उन्होंने अपनी लेखनी से महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की, जिनमें प्रमुख हैं- १.भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास, २. भक्त शिरोमणि महाकवि तुलसीदास, ३. बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास, ४. भाषा विज्ञान, ५. रामानुज, ६. समालोचना तत्व, ७. तुलनात्मक भाषाविज्ञान की उपक्रमणिका आदि।

डॉ. सान्याल जी के कतिपय लेखों की सूची इस प्रकार है- १. मोहन माला, २. महाजन चरित माला, ३. धर्म विषयक लेख माला, ४. दार्शनिक लेख माला, ५. वैष्णव धर्म की उत्पत्ति और विकास, ६. भाषा तत्व विषयक लेख माला और ७. वैज्ञानिक लेख माला आदि।

बंगला में उनकी दो औपन्यासिक कृतियाँ हैं- १. कन्नकी, २. सुभद्रांगी। दोनों पुस्तकें बंगीय साहित्य की अमूल्य धरोहर मानी जाती है।

वे सरस्वती माधुरी, मनोरमा, प्रवासी और भारतवर्ष पत्र-पत्रिकाओं में विद्वता पूर्ण लेख लिखा करते थे।

यह आश्चर्य का विषय है कि हिन्दी साहित्यविद् अपने प्रथम हिन्दी एम.ए. उपाधिधारक डॉ. नलिनी मोहन सान्याल को क्यों भूल गये। इन पंक्तियों का लेखक को इस लेख की सामग्री जुटाने में पचास वर्ष लग गये। अन्त में महान् पुस्तकें और उनके रचनाकारों को हमेशा मानस पटल याद किया जाता है।

नलिनी मोहन सान्याल की मृत्यु ६ जुलाई, सन् १९५१ को हो गयी।

- ग्राम-पो. राँकोडीह, वाया - कोशी कॉलेज,
जिला- खगड़िया - 851205 (बिहार)

हमारा नेता कैसा हो ? वेददृष्टि

- सत्यदेव सिंह

किसी भी देश या राष्ट्र की उन्नति के लिये मुख्य रूप से तीन बातों को महत्त्वपूर्ण माना गया है, वे तीन बाते हैं- १. वस्तुओं की गुणवत्ता, २. सेवाओं की गुणवत्ता, ३. नेतृत्व की गुणवत्ता। जहाँ पर वस्तुओं का उत्पादन उच्चकोटि का हो, कार्य करने वाली सेवायें निःस्वार्थभाव से, सहयोग-सद्भाव के साथ दी जा रही हों और जहाँ का जन-मानस नैतिक मूल्यों की रक्षा करने में सफल व सही नेतृत्व को स्थापित करने में समर्थ हो, तो वह देश विकसित राष्ट्र की कोटि में गिना जाता है और वहाँ की जनता सुखमय जीवन जीने में समर्थ होती है। वस्तुतः सही नेतृत्व का निर्माण सम्बन्धित राष्ट्र या देश की जनता ही करती है। इसीलिये ईश्वरीय वाणी वेद में 'मनुर्भवः' का उपदेश दिया गया है और मानव-निर्माण पर अत्यधिक बल दिया गया है। वेद की यह शिक्षा अद्वितीय एवं अनुपम है। मनुष्य में दिव्यगुणों को जाग्रत करना व मानव धर्म की शिक्षा देना ही वेद वाणी का चरमलक्ष्य है और यही वेद का आदर्श भी है।

यथा राजा तथा प्रजा- नामक लोकोक्ति हम अपने बचपन से ही सुनते आ रहे हैं, जिसका तात्पर्य होता है- जैसा जिस देश का राजा (राष्ट्रनायक) होता है, वैसा ही उसे देश की प्रजा (जनता) होती है, किन्तु वेद की उक्ति उसके उलट है- **यथा प्रजा तथा राजा-** ऐसा इसलिये है कि वेद सदा से ही प्रजातन्त्र का प्रबल पोषक रहा है और आज भी है। श्रेष्ठ नेतृत्व ही किसी भी समाज को व किसी भी राष्ट्र को सही दिशा दे सकता है और उन्नति के शिखर पर ले जा सकता है। देखिये यह वेद मन्त्र क्या कहता है-

मूर्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या
वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिंजनानाम्
आसन्ना पात्रं जनयन्त देवाः।।

(ऋग्वेद-६/७/१), (यजुर्वेद - ७/२४ एवं ३३/८), (सामवेद -६७/११४०)

इस मन्त्र के **ऋषि-** भारद्वाज बार्हस्पत्यः, **देवता-** वैश्वानरः एवं **छन्दः-** आर्षी त्रिष्टुप् है। यह वेद मन्त्र ऋग्वेद के छठे मण्डल के सातवे सूक्त का प्रथम मन्त्र है, तो 'ससर्च सूक्त' के नाम से जाना जाता है। इस मन्त्र की महत्ता इसी से स्पष्ट होती है कि यही मात्र यजुर्वेद में दो बार, सामवेद में भी दो बार दोहराया गया है। जब किसी महत्वपूर्ण विषय को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना हो तो उसे बार-बार कहा जाता है, उसमें पुनरुक्तिदोष नहीं लगता। प्रस्तुत मन्त्र में चूँकि देवता (विषय) के रूप में 'वैश्वानर' को लिया गया है, जिसका अर्थ होता है- पुरोधा = आगे ले चलने वाला = अग्रणी नायक। अतः प्रस्तुत मन्त्र

में नेतृत्व कर्त्ता एवं समस्त मनुष्यों का हित साधने वाले हृदय-सम्राट् नेता के प्रधान गुणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

किसी भी देश में नेता कोई जन्म से, जाति से, वंश या कुल से नहीं होता। जो भी परमेश्वर से युक्त होकर परमेश्वर के दिव्य-गुणों को अपने जीवन में धारण तथा व्यवहृत करता है, उसके अन्दर नेतृत्व-प्रधान गुणों का स्वत: विकास होता है। ऐसा ही व्यक्ति ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्म में विचरण करता हुआ **ब्रह्मणस्पति** और वाणी तथा पाणि की साधना से **वाचस्पति** तथा शुभ और श्रेष्ठतम कर्मों के करने से **यज्ञपति** कहलाता है।

उपर्युक्त वेद मन्त्र के अन्त में **जनयन्त देवाः** पद अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसका अर्थ होता है - 'देवगण निर्माण करें, प्रकाशित करें अथवा प्रादुर्भूत करें'। प्रश्न होता है- किसको ? और देवगण ही क्यों करें, अन्य क्यों नहीं करें? देखिये शतपथ ब्राह्मण (३/७/३/१०) में आया है- **विद्वांसो हि देवाः**। अर्थात् विद्वान् मनुष्य ही **देवः** कहाते हैं। विद्वान् वे विवेकी लोग होते हैं, जो सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप व अच्छे-बुरे का निश्चयात्मक ज्ञान अपनी विवेक-बुद्धि से कर सकते हैं। जो देवजन होते हैं वे निष्काम भाव से श्रेष्ठतम कर्मों को पूरा करते हैं। उनके लिये चाहे बात निर्माण की हो या चयन की हो,- विद्वानों से अधिक सजग नेतृत्व-प्रदाता कोई अन्य हो ही नहीं सकता। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझ सकते हैं। देवासुर-संग्राम इस संसार में अनादि काल से चला आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा देव और असुर प्रजापित की सन्तानें हैं, देव सदैव यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम कर्मों में प्रवृत्त रहते आयें हैं और असुरगण सदैव श्रेष्ठतम कर्मों में विघ्न-बाधा उत्पन्न करते रहे हैं, किन्तु देवों ने असुरों को पछाड़ा है, हराया है, दूर भगाया है। देवों ने सदैव यज्ञ व यजमानों की रक्षा की है, युद्ध लड़े हैं संग्राम किये हैं- विकास के लिये, शान्ति के लिए, निर्माण के लिए और जन-कल्याण के लिए।

अब आगे प्रश्न उत्पन्न होता है कि देवगण किसका निर्माण करें? इस का उत्तर दिया कि 'देवगण देवों का ही निर्माण करें, मनुष्यों को देव बनायें तथा उनमें देवत्व की भावना व नेतृत्व के गुण विकसित करें। इस प्रकार देवों में जो सर्वश्रेष्ठ जन हों, उन्हें ही जननायक या नेता बनायें। नेता कैसा हो? इसका उत्तर प्रस्तुत वेद मन्त्र में दिया गया है, जो इस प्रकार है-

(१) मूर्धानं दिवः- **मूर्धानं दिवः** इस शब्द का अर्थ है- ज्ञान के आलोक से प्रकाशित उच्चतम शिखर के समान। जैसे कि बर्फ से ढके पर्वतों के उच्च शिखर सूर्य के प्रकाश में आलोकित हो उठते हैं, इसी प्रकार नेतृत्व प्रदान करने वाला महापुरुष पूर्ण- परमात्मा के पूर्ण-ज्ञान से पूरी तरह आलोकित होना चाहिये। एक बार साधारण मनुष्य की साधारण-सी भूल को क्षमा किया जा सकता है, किन्तु यह संसार नेताओं की भूल को कभी क्षमा नहीं करता। इतिहास के पन्नों में नेताओं की भूलें बदनुमा दाग़ की तरह हमेशा-

हमेशा के लिये अमिट हो जाती हैं। इसलिये मन्त्र में कहा गया कि नेता (चाहे समाज का हो, सदन का हो, या विश्व का) दिव्य-ज्ञान और दिव्य-गुणों से दीप्त शीर्षस्थ कोटि का होना चाहिये। शतपथ ब्राह्मण (४/२/४/२०) के अनुसार जो सर्वश्रेष्ठ होता है, उसको **शिर** कहा जाता है। पुरुष का शिर ही उसका द्यौ लोक है, शिर से ही 'श्री' है कहा जाता। कहा जाता है कि सही निर्णय का आधार ९० प्रतिशत स्थिति का सही ज्ञान और १० प्रतिशत अन्तर्बोध होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम कह सकते हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी जहाँ बाहरी ज्ञान, बाहर की रोशनी के लिये जरूरी है। वहाँ अध्यात्म (परा-विद्या अथवा ब्रह्म-ज्ञान) अन्तर्बोध (अन्दर की रोशनी) के लिये जरूरी है। यदि अन्दर-बाहर रोशनी नहीं, तो अंधेरा ही अंधेरा होगा और अंधेरे में सिवाय टकराव के और कुछ नहीं हो सकता। अतः नेताओं के लिये तो यह अति-आवश्यक हो जाता है कि व पूरी तरह से ज्ञानवान हों, उनके दिल और दिमाग रोशन हों, मन और बुद्धि आलोकित हों और उनका अन्तरात्मा अन्तर्यामी परमात्मा के आलोक से नित्य आलोकित रहे।

(२) अ-रतिम् पृथिव्याः-नेताओं की भौतिक पदार्थों में आसक्ति नहीं होनी चाहिये। भौतिक पदार्थों व क्षणिक सुखों के प्रति आसक्ति नहीं, अनासक्ति होनी चाहिये। नेता राष्ट्र का रक्षक और पोषक तो हो, पर राष्ट्र के किसी भी भाग के प्रति आसक्त या लोभ-लालच नहीं होना चाहिये। जो व्यक्ति पद व स्थान का लोलुप हो, पद या भूमि के आकर्षण से बँधा रहना चाहे, वेद की दृष्टि में वह नेतृत्व प्रदान करने का अधिकारी नहीं। ममत्व न रखकर समत्व की भावना रखना, अच्छे नेता का प्रधान गुण है। समत्व से ही सर्वोदय सम्भव है। सिद्धि-असिद्धि, मित्र-शत्रु, मान-अपमान, सुख-दुःख, स्तुति-निन्दा आदि द्वन्द्वों के विषय में सम-भावना रखना ही अनासक्ति योग है। नेतृत्व प्रदान करने वाले मनुष्य को यही उचित है कि वह द्वन्द्वों से मुक्त हो, वृत्तियाँ सात्विक हों, आत्म-ज्ञान व आत्मिक बल से परिपूर्ण हो।

(३) वैश्वानरम्- विश्व-नर-हितम् अर्थात् मनुष्यों का हितकारी होना नेता का तीसरा महत्वपूर्ण लक्षण है। इसके लिये भी उसका निःस्पृह, ममत्वरहित और निरहंकारी होना आवश्यक है। निरभिमानता और विनम्रता वैश्वानर अर्थात् नायक के प्रधान गुण हैं। **त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते। तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः।।** (ऋग्वेद ६/७/४)

इस मन्त्र में वैश्वानर के प्रति बड़ी सुन्दर बात कही गई है। जिस प्रकार देवगण नव-जात शिशु को आशीर्वाद देने के लिये उसके प्रति प्रेम से झुकते हैं, उसी प्रकार हे अमृत-तुल्य वैश्वानर! पित्रों (जन-मानस) के प्रति तू प्रकाशित हो। तेरे कर्मों से (जन-मानस) अमृतत्व (दुःखों से छूट कर आनन्द) को प्राप्त हों। ऋग्वेद के मन्त्र संख्या (६/७/७) में वैश्वानर को **अमृतस्य रक्षिता** अमृत (समृद्धि/आनन्द) का रक्षक कहा गया है। इन सभी से नेतृत्व के आधारभूत गूणों का बोध

होता है।

(४) **ऋते आ जातम्**- 'ऋत' का अर्थ है, ऋताचार/अथवा सदाचार। **आ** का अर्थ है अच्छे प्रकार से । **जातम्** का अर्थ है- जाना हुआ, प्रसिद्ध, प्रकाशित। 'वैश्वानर' पूर्णतया ऋताचारी अर्थात् सदाचारी हो। व्यवहार में मधुर और न्यायशील हो। भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिये असत्य और भ्रष्ट-आचरण का आश्रय कभी न ले। उसका सारा जीवन सत्य की रक्षा, सत्यान्वेषण तथा सत्य को उजागर करने के लिये समर्पित होना चाहिये। राष्ट्रहित सर्वोपरि होना चाहिये।

(५) **अग्निम्**- अग्निवत प्रदीप्त, प्रकाशमान, ऊर्ध्वगामी, अग्रणी, तेजस्वी और पावमान होना नेतृत्व प्रदान करने के लिये परमावश्यक है। अग्नि प्रेरक है, हव्य-वाहन है। अग्नि जो कुछ ग्रहण करती है, उसको सूक्ष्मतर करके कई गुणा वायुमण्डल में सबके हित के लिये प्रसारित (फैला) कर देती है। अग्नि ऊर्जा है। ताप, प्रकाश और विद्युत अग्नि के ही रूप हैं। इस प्रकार अग्नि शक्ति का स्रोत है। नेतृत्व प्रदान करने वाला व्यक्ति स्वयं अग्निवत हो। लक्ष्य हो-ऊँचाई की ओर आगे चढ़ना, साथ ही अपने साथ दूसरों के लिये भी प्रगति, उत्थान और विकास का मार्ग प्रशस्त करना। जैसे अग्नि तेजस्विता का प्रतीक है वैसे ही नेता भी तेजस्वी एवं वर्चस्वी होना चाहिये। जैसे कि अग्नि पावक है वैसे ही नेता भी ऐसा हो कि उसके सानिध्य में आने वाले लोग पावन हो जायें। इसके लिये नेता का 'व्यक्तिगत जीवन' और 'सार्वजनिक जीवन' दोनों ही पवित्र होने चाहिये। वेद जीवन को व्यक्तिगत और सार्वजनिक में विभाजित नहीं करता। जीवन तो बस जीवन है, जैसा अन्दर वैसा बाहर, और जैसा बाहर वैसा अन्दर।

(६) **कविम्**- कवि की विशेषता है, उसका कोमल, भावुक और संवेदनशील होना। चिन्तन और मनन की दृष्टि से कवि दूरदर्शी भी है और क्रान्तदर्शी भी। कहते हैं 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पँहुचे कवि'। रचना और सृजन करना उसके कर्म है। नपे-तुले, किन्तु नियम-बद्ध शब्दों में, बहुत ऊँची या बहुत गहरी बात कह देना कवि की अपनी विशेषता होती है। कवि के लिये कोई विषय अछूता नहीं, वह सबका है और सब उसके हैं। कवि-हृदय व्यक्ति में सबकी पीड़ा उसकी पीड़ा होती है। सर्वत्र व्याप्त सौन्दर्य और प्रेम का दर्शन उसकी साधना होती है। अतः कवि के सारे उदात्त गुणों का समावेश एक नेता में भी होना जरूरी है, तभी वह जन-जन का नायक कहलाने योग्य हो सकेगा।

(७) **सम्राजम्**- 'सम्राज' का अर्थ है, समान रूप से अर्थात् पक्षपात रहित होकर, लोगों के दिलों पर राज करने वाला। वह 'नेता' कैसा जिसका कोई अनुयायी न हो। व्यक्ति नेता बनता है- जनाधार से और जनाधार जब बनता है, तब वह जन-जन के दिलों पर राज किया करता है। जितना अधिक वह जनमानस में लोकप्रिय होता है, उतना ही अधिक उसकी ख्याति होती है। वेद के दृष्टिकोण से नेता को विश्वव्यापी बनने का प्रयत्न करना चाहिये। सारी वसुधा उसका कुटुम्ब हो

और चक्रवर्ती सम्राट की भाँति उसके यश - कीर्ति की पताका सर्वत्र लहराये।

(८) अतिथिम्:- जिसके आने व जाने की तिथि निश्चित न हो, वह अतिथि कहलाता है। नेतृत्व प्रदान करने वाले नेता को नेतृत्व प्रदान करना है, पद या कुर्सी से चिपके रहना नहीं। पद या कुर्सी कब मिल जाये और कब छिन जाये, कब आये कब चली जाये, कुछ नहीं कहा जा सकता। अतिथि जब किसी का आतिथ्य ग्रहण करता है तो भली-भाँति वह अपनी स्थिति को समझता है। वह जानता है कि श्रीमान् का घर उसका कुछ क्षणों, घण्टों या दिनों के लिये उसका आश्रयस्थल जरूर है; पर वह उस घर का मालिक नहीं। श्रीमान् के घर अतिथि रहता है, घर की वस्तुओं का उपयोग करता है, भोजन करता है परन्तु वह किसी भी वस्तु से राग नहीं करता। जब जाने का समय आता है सब कुछ यथावत छोड़कर श्रीमान् को आशीर्वाद/शुभकामनायें व्यक्त कर चल पड़ता है। श्रीमान् व उसके आतिथ्य के प्रति अतिथि सम्मानीय व पूजनीय होता है। अतिथि की परिभाषा करते हुये महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते हैं- **जो मनुष्य पूर्ण-विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सत्यवादी, छल-कपट-रहित और नित्य भ्रमण करते हुए विद्या का प्रचार और अविद्या की निवृत्ति सदा करते हैं, उनको 'अतिथि' कहते हैं''** (ऋ. भा.भू. पञ्च.)। मनु महाराज ने भी कहा है- **'अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथि रुच्यते'** (मनु. ३/१०२)। जिसकी स्थिति अस्थायी होती है, अतएव उसे अतिथि पुकारा जाता है। मनुस्मृति (४/३०) में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि जो पाखण्डी, दुर्गुणी, विकर्मी (उल्टे कार्य करने वाला), वैडालवृत्तिक (छली-कपटी), शठ, हैतुक (कुतर्की), बकवृत्ति, (जल्प, वितण्डा), दिखावा करने वाला, स्वार्थी हो, वह 'अतिथि' के गुणों के विपरीत होने के कारण सत्कार का पात्र नहीं होता। नेता में कौन से गुण होने चाहिये और कौन से नहीं, मन्त्र में कितनी सुन्दरता के साथ इस 'अतिथि' शब्द में ही व्यक्त कर दिया है। नेता अतिथि रहेगा तो सम्मान प्राप्त करेगा, पूजनीय और वन्दनीय रहेगा। 'अतिथि' न बन सका तो बड़े बेइज्जत होकर निकाल बाहर कर दिया जायेगा। अतः वेद का यह वचन बहुत ही सटीक व सत्य वचन है।

(९) जनानां आसन्नः पात्रम् - नेता जन समूह में आसन का पात्र होना चाहिए। मनुष्यों में कार्य करते हुए जनता-जनार्दन पात्रता के कारण, जिसको अपना नेता प्रतिष्ठित करे, उसको उच्च आसन दे, हर एक की जुबान पर जिसकी प्रशंसा हो। विद्वान् अपने मुख से जिसका यशोगान करें, और वह स्वयं अपने मन-वचन-कर्म से जनता-जनार्दन का रक्षक हो, उनका परित्राण करने वाला हो, वही योग्य (पात्र) नेता कहलाता है। स्वयंभूः नेता की नेतागीरी बहुत दिनों चलने वाली नहीं होती। स्वयंभूः एकमात्र परमात्मा है, जो अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। अन्य कोई भी स्वयंभूः हो ही नहीं सकता। परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा करने से, अभिनन्दन करने

और करवा लेने से कोई भी नेता नहीं बन सकता। कोटि-कोटि कण्ठों से जिन सुपात्रों का मुक्त स्तवन होता है, कोटि-कोटि लोगों के मुख, जिन सुपात्रों की जय जयकार और उसके कर्तुव्य व सुकर्मों का गुणगान करते नहीं थकते, वे नेता कहलाते हैं।

पुरातन काल में संसार के सभी देशों में प्रायः सामन्तशाही अथवा राजशाही की परम्परा प्रचलित थी। किसी भी देश का शासन-प्रशासन राजा-महाराजा या किंग के माध्यम से चला करता था और राजा का पुत्र ही राजा बन सकता था। वर्तमान काल में परिवर्तन आते-आते (२०वीं शताब्दी तक) संसार के अधिकतर देशों से राजशाही की परम्परा के स्थान पर प्रजातान्त्रिक-परम्परा अपनाई जाने लगी और राजा के स्थान पर राष्ट्राध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति को जाना जाने लगा और देश का शासन-प्रशासन चलाने के लिए प्रधानमन्त्री (प्राइमिनिस्टर) को पूर्णाधिकार दिया जाने लगा। जैसे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में भी प्रधानमन्त्री को सर्वाधिकार दिया गया है, जो संविधान की मर्यादा में रहते हुये अपने देश का संरक्षण, सुरक्षा एवं अन्य समस्त व्यवस्थाओं को बनाये रखने के लिये उत्तरदायी होता है।

ईश्वरीय वाणी वेद में राष्ट्रधर्म का बहुत ही सुन्दर उपदेश दिया गया है। वेद में राष्ट्राध्यक्ष, राजा, प्रजा, सभा, समिति-पारषद् और सभासद-पार्षद आदि सभी के कर्त्तव्यों का बहुत ही विशद वर्णन मिलता है। आगे ऋग्वेद के छटे मण्डल के २०वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में राजा अथवा राष्ट्राध्यक्ष के गुणों का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। देखिये मन्त्र का एक-एक शब्द क्या बता रहा है-

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्
कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धामहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य
विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत्।।
(ऋ. ६/२०/३)

शब्दार्थ : - **तूर्वन्** = शत्रुनाशक, **ओजीयान्** = अधिक ओजस्वी, **तवसः** +**तवीयान्** = बलवान् से भी बलवान् **कृतब्रह्मा** = अन्न, धन ज्ञानादि के संचय का प्रबन्ध करने वाला, **वृद्धमहा** = बड़ी शान वाला, बड़े-बूढ़ों का सत्कार करने वाला, **इन्द्र**= राजा, **यत्** = जब, **विश्वासाम्** = **पुराम्** = शत्रु नगरों को, **दर्त्नुम्** = विदीर्ण करने वाली सेना को, **आवत्** = संग्रह करे और रखे, तब वह **सोम्यस्य** = शान्ति दायक, मधुनः = मिठास का, **राजा** = राजा, **अभवत्** = होवे।

व्याख्या :-

(१) **तूर्वन्** = शत्रुनाशक प्रजाओं को प्रसन्न रखने में राजा का राजत्व है। प्रजा की प्रसन्नता तभी रह सकती है, जब वह अन्दर के और बाहर के शत्रुओं के उपद्रवों से रहित हो।

(२) **ओजीयान्** = दूसरों से अधिक ओजस्वी। यदि दूसरों से अधिक ओजस्वी न हो तो वह अपने राज्य में व्यवस्था स्थिर नहीं रख सकेगा।

(३) **तवसस्तवीयन्** = बलवान् से भी बलवान्। ओज के लिये बल चाहिए। ओजस्वी होने के साथ सर्वाधिक शक्तिमान् हो।

(४) कृतब्रह्मा:- अन्न, धन, ज्ञान का सञ्चय करने वाला। राज्य में व्यवस्था के लिए जिन पदार्थों की आवश्यकता हो, उनका संग्रह करने वाला हो।

(५) वृद्धमहा:- वृद्धों की पूजा-सत्कार करने वाला हो। इस कर्म से राष्ट्र में उसका शासन अक्षुण्ण बना रहता है।

(६) विश्वासां पुरां दर्त्तुमावत् - समस्त शत्रु नगरों को नष्ट करने वाला सेना का रक्षक हो, अर्थात् विजयिनी सेना का अधिपति हो। ऋग्वेद के मन्त्र संख्या (७/३४/११) में कहा है- **राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायुं** = राजा राष्ट्रों (राष्ट्र वासियों) तथा नदियों (गर्जने वाली सेनाओं) का रूप होता है। इसके लिए सदा अदब्ध क्षत्र = क्षात्र बल हो। राजा एक प्रकार से समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधि होता है, अत: वह सबका रूप है। अथर्ववेद (४/२२/२) में राजा के सम्बन्ध में कहा है-

वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजा- यह राजा सभी क्षत्रियों में श्रेष्ठ हो। उसी के सम्बन्ध में अथर्ववेद (४/२२/३) में पुन: कहा है- **अयमस्तु धनपति र्धनामयं विशां विश्वपतिरस्तु राजा** = यह राज धनिकों का धनी हो और प्रजाओं का स्वामी हो। राजा धनेश्वर, ज्ञानी, तेजस्वी, ओजस्वी, बलवान्, विविध गुण सम्पन्न प्रजारञ्जक होना चाहिए।

अत: उपर्युक्त वर्णन से सुस्पष्ट है कि किसी भी देश का नेता, राष्ट्राध्यक्ष अथवा प्रधान (मुखिया) सदाचारी, प्रजाप्रेमी, सहृदय, सरल-स्वभाव, जनता के सुख-दु:ख को समझने वाला, क्षेत्रीय समस्याओं के निदान व निराकरण करने में सक्षम-समर्थ होना चाहिए। बेद के अनुसार हमारा नेता ऐसा हो जो छोटे से छोटे और बड़े से बड़े (महान् ऐश्वर्यशाली) दोनों को सुलभ हो। जो सफलता के साथ कार्य-सम्पादन की विधा को जानता हो, विपत्ति या युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने पर समस्या से जूझने में प्रखर बुद्धि रखता हो और संघर्ष की स्थिति में निष्णात व कुशल हो। इसी भाव को ऋग्वेद के इस मन्त्र में दर्शाया गया है-

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो
अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं
नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे।।
(ऋ. १०/३८/४)

अर्थात्- जिसे छोटे बुला सकें, बड़े बुला सकें। जो दूरस्थ मनुष्य से सहन योग्य कार्य में विधान का ज्ञान रखता हो। विपत्ति के समय ऐसे अत्यन्त शुद्ध विद्वान्, सरल, ऐश्वर्यशाली नेता को हम रक्षा के लिये नियुक्त करते हैं।

- 507 - गोदावरी ब्लॉक, अशोका सिटी, कृष्णा नगर, मथुरा - 281004 (उ.प्र.)

यजुर्वेद में प्राप्त ईश्वरवाचक कतिपय नाम

- रामनारायण शास्त्री

तदेवनिग्रस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।।

सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।[1] यह एक विचार है मन्त्र है। मन्त्र नाम विचार का है "मननात् मन्त्रः"[2]। मनन = चिन्तन मनन के कारण ही मन्त्र को मन्त्र कहते हैं क्योंकि मन्त्र के भीतर (अन्तस् में) विचार छिपा है। जितना-जितना विचार किया जाता है उतना-उतना ही उपयोगी हितसाधक, सारतत्व अर्थ सामने उपस्थित होता जाता है। तर्क संगत विचार = चिन्तन मनन की प्रक्रिया ही मानव को ऋषि बना देती है। इसीलिए कहा है "ऋषयो मंन्त्रद्रष्टारः। ऋशिर्दर्शनात्"[3] साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।[4] मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति? तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्[5]। सृष्टि के आदिकाल से लेकर आजपर्यन्त ऋषियों की सुदीर्घ परम्परा में आधुनिक महनीय ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हमको अर्थात् इस जगत् को यह एक विचार दिया, मन्त्र दिया, कि "गुणकर्मस्वभाव और स्वरूप की अनन्तता के कारण परम पिता परमात्मा के नाम भी अनन्त हैं"1[6] इस मन्त्र अथवा विचार को उन्होंने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के साथ ही अपने सम्पूर्ण साहित्य में यथावसर व्याख्यायित किया है। मानव ही क्या प्राणिमात्र अथवा भूतमात्र का हितचिन्तन करते हुए सार्वभौमिक, सार्वजनिक, सार्वकालिक स्वर्णिम सूत्रों के निर्माण की प्रक्रिया में महर्षि ने ईश्वर को परिभाषित करते हुए लगभग बीस शब्दों को परिभाषा सूत्र में पिरोया है निबद्ध किया है, वे बीस शब्द ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव तथा स्वरूप को परिभाषित करते हैं, वह सूत्र यह है- "**ईश्वर** सच्चिदानन्दस्वरूप निराकार, सर्व-शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करनी चाहिए।[7]

अब हम यथामति कतिपय संज्ञापदों (नामों) का विवेचन उपस्थापित करते हैं, जिनका महर्षि दयानन्दसरस्वती ने अपने यजुर्वेदभाष्य में ईश्वर के नाम के रूप में व्याख्यान किया है।

(अ) ओ३म्- अवति रक्षति प्रीणाति तर्पयति दीपयति वर्धयति गत्यादिकं करोति वा स ओम् परमेश्वरः आरम्भोऽनुमतिर्वा। चादिषु पाठादस्या-व्ययत्वम्। भ्वादिगणस्थ अव धातु से औणादिक मन् प्रत्यय करने पर ओम् शब्द की सिद्धि होती है।[8] गोपथब्राह्मण के अनुसार अव धातु के साथ ही स्वादिगणस्थ आप्लृ धातु से ओम् शब्द बनता है तथा ब्राह्मणकार का मानना है कि "शब्दसाम्य

की अपेक्षा अर्थसाम्य अधिक निकट है। आपृधातु के व्याप्ति अर्थ के कारण उसमें अवधातु के सभी अर्थ सरलता से घट सकते हैं। गोपथब्राह्मण में प्राप्त विवरण इस प्रकार है- "को धातुरिति आपृधातुः अवतिमप्येके। रूपसामान्यादर्थ-सामान्यं नेदीयः। तस्मादापेरोंकार सर्वमा-प्रातीत्यर्थः। कृदन्तमर्थवत् प्रातिपदिकम-दर्शनं नामप्रत्ययस्य सम्पद्यते, निपातेषु चैनं वैयाकरण उदात्तमामनन्ति तदव्ययीभूतम् अन्वर्थवाची शब्दो न व्येति कदाचनेति।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।।

को विकारीति - अवतेः प्रसारणम्। आप्नोतेराकारपकारौ विकार्यौ। आदित ओकारो विक्रियते द्वितीयो मकारः। एवं द्विवर्ण एकाक्षर ओमित्योंकार निर्वृतः"। गोपथब्राह्मण ११..२६।।

सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में स्वामी जी ने "ओम्" शब्द का व्याख्यान इस प्रकार किया है- (ओ३म्) जो यह ओंकार शब्द है वह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है; इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर हैं वे मिलकर एक "ओ३म्" समुदाय हुआ है। इस एक से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं; जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं-।[९] महर्षिदयानन्द ने यजुर्वेद में प्राप्त "विश्वेदेवास इह मादन्तमो३म् प्रतिष्ठ"[१०] मन्त्र पर ओ३म् शब्द का व्याख्यान इस तरह किया है- (ओ३म्) ईश्वरवाचको यज्ञो वेदविद्या वा। ओ३म् खं ब्रह्म। यजुः४०।१७। अत्र अवतेष्टिलोपश्च उणादि १.१४२। अनेनावधातोर्मन् प्रत्ययोऽस्य टिलोश्च। "ओ३म् क्रतो स्मर"[११] यहाँ पर (ओ३म्) एतन्नामवाच्यमीश्वरम् (क्रतो) यः करोति जीवस्तत् सम्बुद्धौ (स्मर) पर्यालोचय। अथ च "ओ३म् खं ब्रह्म" इस स्थल पर (ओ३म्) योऽवति सकलं जगत् तदाख्या (खम्) आकाशवत् व्यापकम् (ब्रह्म) सर्वेभ्यो गुणकर्मस्वरूपतो बृहत्"।[१२] इस प्रकार यजुर्वेद में प्राप्त तीनों स्थलों पर ओम् शब्द का अर्थ ईश्वर ही है।

(आ) अग्नि - गति अर्थवान् अगिधातु से औणादिक नि प्रत्यय करने पर अग्नि शब्द बनता है। अङ्गति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा यः स अग्निः, ईश्वरो वह्निर्वा।[१३] स्वामी जी महाराज ने अग्निशब्द का निर्वचन सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार किया है- "(अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग्. अगि इण् गत्यर्थक) धातु हैं इनसे अग्नि शब्द सिद्ध होता है। गतेस्त्रयोऽर्थाः, ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति। पूजनं नाम सत्कारः। योऽञ्चति अच्यतेऽगति अङ्गति एति वा सोऽयमग्निः। जो ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ जानने प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है। इससे परमेश्वर का नाम अग्नि है।[१४] महर्षिदयांनन्द ने अपने वेदभाष्य में अनेकत्र अग्निशब्द को ईश्वर अर्थ में व्याख्यायित किया है। यहाँ कतिपय मन्त्र निदर्शन के रूप में उद्धृत हैं। "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' इस यजुष् की व्याख्या में ऋषिवर लिखते हैं- (अग्ने) सत्योपदेशकेश्वर![१५] अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व... यजुष् की व्याख्या करते हुए लिखा है- (अग्ने) परमेश्वर भौतिको वा (ब्रह्म)

वेदम्।[१६] और आगे अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषम् यजुष की व्याख्या में लिखा है (अग्ने) सत्यस्रूपेश्वर।[१७] बत्तीसवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में भी अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर ही किया है। (अग्निः) ज्ञानस्वरूपत्वात् स्वप्रकाशत्वाच्च।[१८] प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे.. मन्त्र के व्याख्यान में भी अग्नि का अर्थ परमात्मा किया है (अग्निम्) पवित्रं स्वप्रकाशं परमात्मानं पावकमग्निं वा।[१९] अग्ने नय सुपथा राये... मन्त्र व्याख्यान के समय भी ईश्वर अर्थ किया है (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर।[२०] इस तरह यजुर्वेद में अग्नि शब्द का प्रयोग भौतिकाग्नि तथा ईश्वर अर्थ में हुआ है यह स्पष्टतया प्रतीत हो रहा है।

(इ) अर्यमा- अर्य उपपद में रहते मान तथा शब्द अर्थवान् माङ्धातु से औणादिक कनिन् प्रत्यय करने से अर्यमन् शब्द बनता है। अर्य स्वामिनं प्रगतिशीलं वा मिमीते मन्यते जानातीति वा अर्यमा आदित्य ईश्वरो वा।[२१] स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश में अर्यमा शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखते हैं- (ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से यत् प्रत्यय करने से अर्य शब्द सिद्ध होता है और अर्य पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से कनिन् प्रत्यय होने से अर्यमा शब्द सिद्ध होता है। योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा जो सत्य न्याय के करने वाले मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्या-सत्य नियमकर्ता है इसी से परमेश्वर का नाम अर्यमा है।[२२] प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र... में प्रयुक्त अर्यमा शब्द का अर्थ स्वामी जी लिखते हैं- (अर्यमा) न्यायाधीशः।[२३] न्यायधीशों का भी न्यायाधीश सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश होने से यहाँ ईश्वर अभिप्रेत है। इस तरह राजा न्यायाधिपति के साथ ही अर्यमा शब्द ईश्वर अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।

(ई) कविः- शब्द अथवान् कु धातु से औणादिक इ प्रत्यय करने पर कवि शब्द बनता है। कौति शब्दयतीति कविः क्रान्तदर्शी ईश्वरो वा।[२४] सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि कवि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं- (कु शब्दे) इस धातु से कवि शब्द सिद्ध होता है। यः कौति शब्दयति सर्वा विद्याः स कविरीश्वरः, जो वेद द्वारा सब विद्यायों का उपदेष्टा और वेत्ता है, इसलिए परमेश्वर का नाम कवि है।[२५] स पर्यगाच्छुक्रमकायम्.... यजुष् की व्याख्या करते हुए महर्षि कवि शब्द का अर्थ सर्वज्ञ लिखते हैं (कविः) सर्वज्ञः।[२६] इस मन्त्र में शुक्र आदि आठ शब्द ईश्वर के वाचक के रूप में ही प्रयुक्त हैं; क्योंकि ये ईश्वर के गुण और स्वरूप का ज्ञान करा रहे हैं। उव्वट और महीधर ने भी कवि अर्थ क्रान्तदर्शी तथा सर्वद्रष्टा किया है। (कविः) क्रान्तदर्शनः। (उव्वटः)। (कवि) सर्वदृक् नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ इति श्रुतेः। (महीधरः)।[२७]

(उ) तद्-यद् - विस्तार अर्थवान् तनु धातु से औणादिक आदि प्रत्यय करने पर तद् शब्द बनता है। देवपूजा संगतिकरण और दान अर्थवान् यज धातु से अदि प्रत्यय करने से यद् शब्द बनता है। तनुते विस्तृतो भवति विस्तारयतीति तद्। यजति सर्वैः पदार्थैः सङ्गतो भवतीति यद् ब्रह्मणो नामनी एते। त्यदादीनां सर्वनाम संज्ञा भवति तेन सामान्यवाचकास्त्यदादयः। ये दोनों शब्द ब्रह्म = ईश्वर के वाचक हैं; सर्वनाम संज्ञा होने के कारण सामान्यवाचक भी हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने

यजुर्वेद के बत्तीसवें अध्याय का भाष्य करते हुए प्रथम मन्त्र पर तद् शब्द के व्याख्यान में ईश्वर के गुण, कर्म और स्वरूप का वर्णन किया है। (तद्) सर्वज्ञं सर्वव्यापि सनातनमनादि सच्चिदानन्द स्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं न्यायकारि दयालु जगत्स्रष्टृ जगद्धर्तृ सर्वान्तर्यामि।[२९] इसीप्रकार स पर्यगाच्छुक्रमकाय... मन्त्र में आगत सः शब्द का अर्थ स्पष्टतया परमात्मा किया है। (सः) परमात्मा।[३०] अथर्ववेदीयमन्त्र-यस्तिष्ठति चरति...। में प्राप्त यः पद का स्पष्टार्थ ईश्वर (ब्रह्म) ही है।[३१]

(ऊ) परमेष्ठी - परम पूर्वकष्ठा गतिनिवृतौ धातु से औणादिक इनि प्रत्यय करने से परमेष्ठिन् शब्द बनता है। परमे उत्कृष्टे व्यवहारे तिष्ठतीति परमेष्ठी सर्वेषां पितामहः, ईश्वरो वा।[३२] परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिः...। यजुष् में प्राप्त परमेष्ठी का व्याख्यान महर्षि इस प्रकार करते हैं- (परमेष्ठी) परमे उत्कृष्टे स्वरूपे तिष्ठतीति। यहाँ यह पद प्रजापतिः (ब्रह्म ईश्वर) के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।[३३]

(ऋ) पुरुष :- "पुर अग्रगमने" धातु से औणादिक कुषन् प्रत्यय करने पर पुरुष शब्द सिद्ध होता है। पुरति अग्रे गच्छति प्रथमं प्राप्रोतीति वा स पुरुषः पुमान् परमात्मा वा।[३४] स्वामी जी महाराज ने सत्यर्थप्रकाश में पुरुष शब्द को इस प्रकार व्याख्यायित किया है- (पृ पालनपूरणयोः) इस धातु से पुरुष शब्द सिद्ध हुआ है। यः स्वव्याप्त्या चराचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः" जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है इसलिए परमेश्वर का नाम पुरुष है।[३५] यजुष् ३१.१ का भाष्य करते हुए महर्षि पुरुष शब्द का व्याख्यान इसप्रकार लिखते हैं- (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः पुरुषः पुरुषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तरिति अन्तरपुरुषमभि प्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति... इति निरुक्त २.१.३। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसी मन्त्र पर पुरुषशब्द का व्याख्यान ऋषिवर ने इस तरह किया है- (पुरुषः) पुरि सर्वस्मिन् संसारेऽभिव्याप्य सीदति वर्तत इति। (पूरयतेवी) यः स्वयं परमेश्वर इदं सर्वं जगत् स्वस्वरूपेण पूरयति व्याप्नोति तस्मात् स पुरुषः (अन्तरिति)। यो जीवस्यापि अन्तर्मध्येऽ-भिव्याप्य पूरयति तिष्ठति स पुरुषः। तमन्तरपुरुषमन्तर्यामिनं परमेश्वरमभिप्रेत्येयमृक प्रवृत्तास्ति-

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्- तैत्तिरीयारण्यके १०.१०.२०।[३६]

इस प्रकार इस सम्पूर्ण अध्याय में महर्षि ने पुरुषशब्द का अर्थ परमेश्वर ही किया है।

(ऋ) विश्ववेदा :- विश्व उपपद में रहते विद् धातु से औणादिक असि प्रत्यय करने से विश्ववेदाः शब्द बनता है। विश्वं सर्वं वेत्ति जानाति प्राप्नोति प्राप्तोऽस्तीति वा स विश्ववेदाः जगदीश्वरोऽग्निर्वा।[३७] यजुर्वेद का भाष्य करते हुए ऋषिवर ने इस प्रकार अर्थ किया है- (विश्ववेदसम्) यो विश्वं वेत्ति स विश्ववेदाः परमेश्वरः विश्वं सर्वं सुखं वेदयति प्रापयति स भौतिकोऽग्निर्वा।[३८] इस प्रकार गुण तथा कर्म के कारण विश्ववेदाः शब्द के परमेश्वर एवं भौतिकपदार्थ अग्नि दोनों ही अर्थ किये हैं।

(लृ) विष्णु :- व्याप्ति अर्थवान् विष्लृ धातु से औणादिक नु प्रत्यय करने पर विष्णु शब्द बनता

है। वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः परमेश्वरः।[३९] महर्षिदयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दर्शायी है। (विष्लृ व्याप्तौ) इस धातु से नु प्रत्यय करने पर विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है। "वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः परमात्मा" चर और अचर जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।[४०] महर्षि यजुर्वेद में प्रयुक्त विष्णु शब्द का व्याख्यान इस प्रकार करते हैं- (विष्णोः) व्यापकस्य। (विष्णोः) पूर्वमन्त्रप्रतिपादितस्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहृति-विधातुः परमेश्वरस्य।[४१] अन्यत्र भी यजुर्वेदभाष्य में विष्णु शब्द का अर्थ परमेश्वर तथा यज्ञ किया है।

(ए) शिव :- शयन अर्थवान् शीङ् धातु से वन् प्रत्यय करके निपातन से शिव शब्द बना है। शेते सहजतया सर्वं विराजतेऽसौ शिवः, शिव ईश्वरः, शिवं भद्रं सुखमुदकं च; शिवं भद्रं सुखमुदकं च; शिवा हरीतकी। धातोर्ईस्वत्वम्।[४२] सत्यार्थ-प्रकाश में ऋषिवर शिव शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं- (शिव कल्याण) इस धातु से शिव शब्द सिद्ध होता है। "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इससे शिवु धातु माना जाता है। जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करने हारा है इसलिए परमात्मा का नाम शिव है।[४३] यजुर्वेदभाष्य में स्वामी जी महाराज ने शिव का कल्याण करने वाला अर्थ किया है-(शिवाय) मङ्गलकारिणे (शिवतराय) अतिशयेन मङ्गलस्वरूपाय।[४४]

(ऐ) ब्रह्म :- वृद्धि अर्थावान् बृहि धातु से औणादिक मनिन् प्रत्यय करने से ब्रह्म शब्द बनता है। बृंहति वर्धन्ते यस्याधारेण सर्वे तद् ब्रह्म ईश्वरो वेदस्तत्वं तपो महद्वा।[४५] ईश्वर के ओम् आदि सभी नाम सार्थक हैं; जैसे (ओम् खम् ब्रह्म) अवतीत्योम्; आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्; सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म। रक्षादि करने से ओम्; आकाशवद् व्यापक होने से खम् और सबसे बड़ा होने से ब्रह्म ईश्वर का नाम है।[४६] सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी है- (बृह, बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से ब्रह्म शब्द सिद्ध हुआ है। जो सबके ऊपर विराजमान सबसे बड़ा अनन्त-बलयुक्त परमात्मा है उसको ब्रह्म कहते हैं।[४७] यजुर्वेदभाष्य में महर्षि ने ब्रह्म शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है- (ब्रह्म) सर्वेभ्यो महत्वात्।[४८]

(ओ) देव :- क्रीडादि अर्थवान् दिवु धातु से अच् प्रत्यय करने पर देव शब्द बनता है।[४९] सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती देव शब्द का निर्वचन करते हुए लिखते हैं- (दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्र-कान्तिगतिषु) इस धातु से देव शब्द सिद्ध होतो है। (क्रीडा) जो शुद्ध जगत् को क्रीडा कराने (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता (द्युति) स्वयं प्रकाशस्वरूप सबका प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देने हारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा (स्वप्र) सबके शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है। इसलिए उस परमेश्वर का नाम देव है। अथवा "यो दीव्यति क्रीडति स देवः" जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीडा करे अथवा किसी के

सहाय के बिना क्रीडावत् सहज स्वभाव से सब क्रीडाओं का आधार है। "यो विजिगीषते स देव:" जो सबका जीतनेहारा स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई न जीत सके। "यो व्यवहारयति स देव:" जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जाननेहारा और उपदेष्टा है। "यश्चराचरं जगद् द्योतयति स देव:" जो सबका प्रकाशक। "य: स्तूयते स देव:" जो सब मनुष्यों की प्रशंसा के योग्य हो और निन्दा के योग्य न हो। "यो मोदयति स देव:" जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरो को आनन्द करता जिसके दु:ख का लेश भी न हो। "यो माद्यति स देव:" जो सदा हर्षित शोकरहित और दूसरों का हर्षित करने और दु:खों से पृथक् रखने वाला। "य स्वापयति स देव:" जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता है। "य: कामयते काम्यते वा स देव:" जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं तथा "यो गच्छति वा स देव:" जो सबमे व्याप्त और जानने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम देव है।[५०] महर्षि ने अपने इस निर्वचन के अनुसार ही यजुर्वेदभाष्य में सर्वत्र देव शब्द का व्याख्यान किया है। (देव:) सर्वेषा सुखानां दाता सर्वविद्याद्योत्तक:।[५१] (देव:) स्वयं प्रकाशस्वरूप: परमेश्वर:।[५२] (देवस्य) सर्वजगत्प्रकाशकस्य सर्वसुखदातुरीश्वरस्य।[५३]

(औ) सविता :- षुञ् अभिषवे षू प्रेरणे, षु प्रसवैश्वर्ययो: इन धातुओं से **तृच्** प्रत्यय करने पर सविताशब्द बनता है।[५४] स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में सविताशब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखते हैं- (षुञ् अभिषवे षूङ् प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से सविता शब्द सिद्ध होता है। "अभिषव: प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचर जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वर:" जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिए परमेश्वर का नाम सविता है।[५५] महर्षिदयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेदभाष्य में सर्वत्र सविताशब्द का अर्थ अपनी व्युत्पत्ति के अनुरूप ईश्वर ही किया है। यथा- (सविता) सकलजगदुत्पादक: सकलैश्वर्यवान् जगदीश्वर:।[५६] (सविता) सर्वेषा वसूनाम् अग्निपृथव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता।[५७] (सवितु:) तस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्यप्रदातु:।[५८] (सवितु:) समग्रस्य जगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्यप्रदस्य।[५९] (सवित:) उत्तमगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरकपरमेश्वर:।[६०] इस सब कथन से यही सिद्ध है कि ईश्वर के सभी नाम कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक है-

इस प्रकार यजूर्वेद में प्राप्त होने वाले बहुत शब्द गुणकर्मस्वभाव और स्वरूप के कारण ईश्वर के वाचक हैं। हमने यहां मात्र तेरह (१३) शब्दों को निदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया है।

- आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृतविभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सिरोही - 305001 (राजस्थान)।

---

१. आर्यसमाज का प्रथम नियम २. निरुक्त ७.३.५ ३. निरुक्त २.३.२'
४. निरुक्त १.६.४ ५. निरुक्त १३.१२

६. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृष्ठ ८ ७. आर्यसमाज का द्वितीय नियम
८. धातुपाठभ्वादि ३९७। अणादिसूत्रपाठ १.१४२
९. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. ९ १०. यजुर्वेद २.१३ पर दयानन्द भाष्य
११. यजुर्वेद ४०.१५ पर दयानन्द भाष्य १२. यजुर्वेद ४०.१७ पर दयानन्द भाष्य
१३. धातुपाठभ्वादि ८८। उणादिसूत्रपाठ ४.५१ १४. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. ९
१५. यजुर्वेद १.५ पर दयानन्द भाष्य १६. यजुर्वेद १.१८ पर दयानन्द भाष्य
१७. यजुर्वेद २.२८ पर दयानन्द भाष्य १८. यजुर्वेद ३२.१ पर दयानन्द भाष्य
१९. यजुर्वेद ३४.३४ पर दयानन्द भाष्य २०. यजुर्वेद ४०.१६ पर दयानन्द भाष्य
२१. धातुपाठभ्वादि ६७१। उणादिसूत्रपाठ १.१५९
२२. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. ११ २३. यजुर्वेद ९.२९ पर दयानन्द भाष्य
२४. धातुपाठअदाअद ३५। उणादिसूत्रपाठ ४.१४०
२५. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. १८ २६. यजुर्वेद ४०.८ पर दयानन्दभाष्य
२७. यजुर्वेद ४०.८ पर उव्वट महीधर भाष्य २८. धातुपाठतनादि १। भ्वादि ७२९। उणादिसूत्रपाठ १.१३२
२९. यजुर्वेद ३२.१ पर दयानन्द भाष्य ३०. यजुर्वेद ४०.८ पर दयानन्द भाष्य
३१. अथर्ववेद ४.१६.२ ३२. धातुपाठभ्वादि . ६६३। उणादिसूत्रपाठ ४.१०
३३. यजुर्वेद ८.५ पर दयानन्दभाष्य ३४. धातुपाठभ्वादि ५७। उणादिसूत्रपाठ. ४.७५
३५. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. १८ ३६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सृष्ट्युत्पत्ति पृ. १२६
३७. धातुपाठअदादि. ५७ तुदादि. १४०। उणादिसूत्र. ४. २२८
३८. यजुर्वेद ३.३८ पर दयानन्दभाष्य ३९. धातुपाठजुहोत्यादि . १३। उणादिसूत्र . ३.३९
४०. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. ११ ४१. यजुर्वेद ६.४ व ५ पर दयानन्दभाष्य
४२. धातुपाठअदादि. २५। उणादिसूत्रपाठ. १. १५३
४३. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. १८ ४४. यजुर्वेद १६.४१ पर दयानन्दभाष्य
४५. धातुपाठभ्वादि. ४८८। उणादिसूत्रपाठ. ४.१४७
४६. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. २ ४७. सत्यार्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. ११
४८. यजुर्वेदभा ३२.१ पर दयानन्दभाष्य ४९. धातुपाठदिवादि. १। अष्टाध्यायी ३.१.१३४
५०. सत्यर्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. १२ ५१. यजुर्वेद १.१ पर दयानन्दभाष्य
५२. यजुर्वेद १.३ पर दयानन्दभाष्य ५३. यजुर्वेद ३०.२ पर दयानन्दभाष्य
५४. धातुपाठस्वादि.१। तुदादि. ११६। भ्वादि. ६७५। अदादि. ३४। अष्टाध्यायी. ३.१.१३३
५५. सत्यर्थप्रकाश प्रथमसमुल्लास पृ. १२ ५६. यजुर्वेद १.१ पर दयानन्दभाष्य
५७. यजुर्वेद १.३ पर दयानन्दभाष्य ५८. यजुर्वेद १.११ पर दयानन्दभाष्य
५९. यजुर्वेद ३०.२ पर दयानन्दभाष्य ६०. यजुर्वेद ३०.३ पर दयानन्दभाष्य

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. १०
जनवरी ,२०२४

सत्संग की महिमा

- कृष्णाचन्द्र टवाणी

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च,
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा।
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः,
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि याम।।

(श्रीमद्भागवत ११/१२/१-२)

भावार्थ: जगत् में जितनी आसक्तियां हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर सकता है। सत्संग जिस प्रकार भगवान् को वश में कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न धर्म पालन और न स्वाध्याय। तपस्या, त्याग, साधना और दक्षिणा से भी प्रभु वैसे प्रसन्न नहीं होते। कहाँ तक कहा जाये, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम नियम भी सत्संग के समान परमात्मा को वश में करने में समर्थ नहीं है।

सत्संग की आवश्यकता क्यों ?

मनुष्य शरीर केवल परमात्मा की प्राप्ति के लिए मिला है, किन्तु अज्ञानतावश मानव अपने उद्देश्य की प्राप्ति में इस अमूल्य निधि का दुरुपयोग करने लगा और इसी से ८४ लाख योनियों एवं नरकों की तैयारी कर ली। इस महती विपत्ती से बचने का अत्यंत सुगम उपाय सत्संग है। सत्संग मिलने पर मनुष्य जन्म का क्या उद्देश्य है यह ज्ञान हो जाता है। तभी भूला भटका मानव परमात्मा की ओर बढ़ता है। अतः सांसारिक उलझनों को सुलझाने के लिए सत्संग परम आवश्यक है।

सत्संग क्या है ?

प्रभु में प्रेम जाग्रत करने के नौ साधन बताये गये हैं। इन साधनों में पहला साधन है सत्संग- प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। जो महापुरूष परमात्मा से प्रेम करते हैं, उनका तुम संग करो। प्रभु प्रेमी वैष्णवों का संग करो। तुम जिसके संग रहोगे उस जैसे हो जाओगे। मनुष्य जन्म से बिगड़ा हुआ नहीं होता। जीव जब जन्मा था तब वह शुद्ध था। विचार करो बालक जब जन्मा था तब क्या उसे कोई व्यसन था, कोई कुटेव थी, पाप करने की आदत थी, अभिमान था? नहीं था। परंतु कालान्तर में बड़ा होने पर उसमें व्यसन, कुटेव सभी आ गये। कहाँ से आये से सब। बड़ा होने पर जिसकी संगति में वह आया, उसी जैसा बन गया। कुसंग से जीवन बिगड़ता है। महाकवि सूरदासजी का कहना है-

तजो रे मन हरि विमुखन को संग।
जाके संग कुबुद्धि उपजत है परत भजन में भंग।।

भक्त, दानवीर, परोपकारी, संत आदि जैसा आप बनना चाहें वैसे ही महापुरूषों का आदर्श अपने सामने रखें। संसार व्यवहार में रहकर सदाचार का पालन करना, ब्रह्मज्ञान स्थिर रखना, भक्ति करना यह सब कठिन अवश्य है परंतु असंभव नहीं। आवश्कता है दृढ़ इच्छाशक्ति की।

इच्छाशक्ति को दृढ़ करने के लिए प्रभु के नाम का जप करें। संगति का प्रभाव बहुत होता है। सत्संग के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। सत्संग से मन का मैल दूर होता है। आप जैसे भी है, वह अपनी संगति के प्रभाव से ही हैं। आपकी प्रभु में पूर्ण निष्ठा व विश्वास है। अतः अपने बालक-बालिकाओं में भी सत्संग करने की आदत डालना आवश्यक है। आप जब भी किसी महापुरूष, संत के सत्संग में सम्मिलित होने जावे, अपने बालकों को अवश्य साथ ले जावें। इससे सत्संग के प्रभाव से उनमें सुसंस्कार उत्पन्न होंगे।

सत्संग स्वच्छ शीतल गंगा है। इसमें स्नान करने से मन का मैल धुल जाता है। जो इस सत्संग रूपी गंगाजी में स्नान करता है उसको दान, तीर्थयात्रा, तप अथवा यज्ञ की आवश्यकता नहीं रहती। जिन महापुरूषों को भक्ति का रंग लगा है, ऐसे संतों का आश्रय लो, ऐसे संतों के चरित्र पढ़ो। संतों के मन के साथ मन मिला दो। पूर्व के उत्तम संस्कारों के प्रभाव से संतों का मिलन होता है। श्रीरामचरितमानस के उत्तर कांड में स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने प्रजा को उपदेश देते हुए कहा है-

भक्ति सुतंत्र सकल सुखी खानी,
बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी।।
पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता,
सतसंगति संसृति कर अन्ता।।

भक्ति स्वतंत्र साधन है और सब सुखों की खान है परंतु सत्संग के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते और पुण्य समूह के बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही जन्म मरण का अंत करती है। इसी विषय में श्री महादेवजी ने गरुड़ जी से कह है-

बिनु सत्संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होई न दृढ़ अनुराग।।

सत्संग के बिना श्रीहरि की कथा सुनने को नहीं मिलती, हरि कथा श्रवण के बिना मोह नहीं भागता और मोह के गये बिना श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में दृढ़ प्रेम नहीं होता।

बिन सतसंग विवेक न होई,
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सतसंगत मुद मंगला मूला,
सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।

सत्संग के बिना विवेक (सत्-असत् की पहचान) नहीं होता और श्रीरामचन्द्र जी की कृपा के बिना यह सत्संग सहज में नहीं मिलता। सत्संग ही आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की प्राप्ति (सिद्धि) ही फल है, अन्य सब साधन तो फल मात्र है। भक्त रानाबाईसा ने सत्संग का महत्त्व इस प्रकार बतलाया है-

साधां रो समाज म्हनै सदाई सुहावै,
धिन घड़ी भाग ज्यारे संत आवै।
भोम का सुफल हे ऊमां संत बिराजै,
बैल ऊतर संकर सिर नावै।।

- प्रधान संपादक ''अध्यात्म अमृत'' महासचिव ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ - 305801 (राज.)।

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. १०
जनवरी ,२०२४

नैतिक पतन का जिम्मेदार कौन ?

- विजयप्रकाश त्रिपाठी

अपने देश में सबसे पहले सिनेमा का निर्माण दादा साहेब फाल्के ने १९१३ ई. में किया था। तब से अभी तक भारतीय फिल्म उद्योग प्रगति-पथ पर अग्रसर है। फिल्म निर्यात से केंद्रीय एवं राज्य सरकारों को काफी आमदनी होती है। वैसे तो इस बात पर गर्व किया जा सकता है कि भारतीय फिल्म उद्योग विश्व के फिल्म उद्योगों में महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। संप्रति अमर्यादित फिल्मों के दुष्परिणाम पर दृष्टि डाले, तो लज्जा ही अनुभव करनी पड़ती है। बड़े शर्म से कहना पड़ रहा है कि आज लगभग नब्बे प्रतिशत फिल्में इस प्रकार निर्माण हो रही हैं, जिनसे पारिवारिक व सामाजिक वातावरण दूषित होता है व अपराधों में वृद्धि हो रही है। उन्हें देख-देखकर छोटी-छोटी आयु के बालक-बालिकाएं भी अनैतिकता व मानसिक पतन की ओर उन्मुख हो रही हैं। आज का विद्यार्थी जीवन जितना अनुशासनविहीन और अमर्यादित हो रहा है, उसका बहुत बड़ा दोष फिल्म जगत् को जाता है। दूषित फिल्में व दूरदर्शन को देखकर युवक चोर, जालसाज, पॉकिटमार व शराबी बन रहे हैं और इससे भी एक कदम आगे बढ़कर उनका नैतिक पतन भी हो रहा है।

आज युवक-युवतियों में कामुकता की भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए अंग-प्रदर्शन एवं चुंबन जैसे दृश्यों को बढ़ावा दिया जा रहा है। कुछ फिल्म निर्माताओं का तो यहां तक कहना है कि बलात्कार के दृश्य, पात्रों का अश्लील प्रस्तुतीकरण, नारी पात्रों के अर्द्धनग्न शारीरिक प्रदर्शन, यह सभी बात अति सामान्य हो गई है। परिणाम यह हो रहा है कि यौन अपराध दिन-दूने रात चौगुने बढ़ते ही जा रहे हैं, जो राष्ट्र के शुभचिंतकों के लिए चिंता का विषय बन गए हैं।

फिल्मों में जीवन की यथार्थता का बिम्ब लक्षित होना चाहिए। देशव्यापी समस्याओं, गरीबी, बेरोजगारी, शोषण आदि का रेखांकन होना चाहिए। परंतु फिल्म निर्माता तो धन बटोरने में जुटे हैं, देश में उनकी बनाई फिल्म से कितना पतन हो रहा है, उनसे कोई सरोकार नहीं।

भारतीय फिल्म सेंसर बोर्ड को यह दायित्व दिया गया था कि वह उन फिल्मों का प्रदर्शन न होने दे, जो समाज की नैतिक मान्यताओं के प्रतिकूल हों। जिसमें बालात्कार व भ्रष्टाचार, नग्न शरीर या कामोत्तेजक शारीरिक आकृति दिखाई गई हो, लेकिन आज फिल्म निर्माता व सेंसर बोर्ड दोनों मिलकर राष्ट्र के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। इन दोनों के सांठ-गांठ से सभी उद्देश्य घायल

पड़े कराह रहे हैं।

गंदी, अश्लील फिल्मों व फूहड़ टेलीविजन कार्यक्रमों ने वर्तमान में तो अति ही कर दी है। हमें ऐसे चित्र नहीं चाहिए, जिनमें बेहूदे गानें, भद्दे मजाक, सैक्स दर्शन के अतिरिक्त और कुछ न हो। आज आवश्यकता इस बात की है कि फिल्म उद्योग के वर्तमान रूप में आवश्यक परिवर्तन कर, उसे कल्याणकारी शिक्षा व स्वस्थ संस्कारों का माध्यम बनाया जाए। स्टार टीवी. व जी. टीवी, केबल टीवी के पदार्पण के उपरांत दूरदर्शन ने भी प्रतिद्वंद्विता पर विचार किया। परिणामस्वरूप एक पूर्णत: नग्नता की परेड वाला फैशन शो दिखाया जाने लगा है। नैतिक पतन की ओर रुख होना हमारी मानसिक कमजोरी है। एक आंकड़े के मुताबिक भारतवर्ष में ८० प्रतिशत युवा ऐसे कामुक प्रदर्शन देख रहे हैं, जैसे यह कोई जीवन निर्माणका आध्यात्मिक उद्‌बोधन हो।

चाहे फिल्में हों या टीवी या सी.डी. कैसेट, हमें देखने की एक समय सीमा बनानी होगी कि पश्चिमी राष्ट्र जिसे देखते ऊब गया है, क्या हम उसे अपने देश में बढ़ावा देंगे? उत्तर हमको-आपको देना होगा। रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करके अश्लीलता के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल हमें अपने घर से ही बजाना प्रारंभ करना होगा।

- 86/323, देवनगर, कानपुर - 208003 (उ.प्र.)।
मो. 9235511083

ISSN 0505-7523
विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. १०
जनवरी ,२०२४

सनातन वैदिक परम्पराओं में -
राष्ट्र का मुखिया कौन ?

- कन्हैया लाल पाराशर

किसी भी राष्ट्र के लिये उसका कोई एक योग्य मुखिया होना नितान्त आवश्यक होता है। रामायण में कथन मिलता है कि राष्ट्रनायक के अभाव में राज्य में अनेक प्रकार की अराजकताएं पैदा हो जाती हैं। ये अराजकताएं राष्ट्र के विघटन का कारण बन जाती है। अराजकता की स्थिति में जनता के योगक्षेम का समूल विनाश हो जाता है। अराजक राष्ट्र में सैन्यबल भी आतङ्करूप कण्टक को उखाड़-फेंकने में असमर्थ हो जाते हैं-

नाराजके जनपदे योग-क्षेमः प्रवर्तते।
न चाऽप्यराजके सेना शत्रून् विषयते युधि।।
(बाल्मीकि रामायण अयो. कां ६७-२४ गी. प्रे.)

ऋग्वेद के अनुसार प्रजाजन राष्ट्रनायक का निर्वाचन करते हैं- **विशो न राजानं वृण्णानाः** (ऋग्वेद १०,२४,८) राष्ट्र का एक ही नेता हो तो अच्छा है अन्यथा गठबन्धन में प्रत्येक राजनीतिक दल का नेता अपनी-अपनी ही हाँकता है और इस खींचातानी में राष्ट्र की स्थिति बिगड़ जाती है- **अनायकाः विनश्यन्ति नश्यन्ति बहुनायकाः।** (चाणक्य राजनीति शास्त्र ५४ तथा महासुभाषितसंग्रह पृ. २२८ पर सुभाषित १३३०)

राष्ट्र का मुखिया कौन हो? कैसा हो? उसमें क्या-क्या योग्यताएं हों? उसके चयन में क्या-क्या सावधानियाँ राष्ट्र की जनता को रखनी चाहिएं? चयनित मुखिया का जनता के साथ सम्बन्ध कैसा रहे? चयनित मुखिया के क्या प्रमुख कार्य हैं, उसकी कार्य-विधि कैसी हो? इस सबको जानना भी अनिवार्य हो जाता है। राष्ट्र के हित में यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि राष्ट-प्रमुख का चुनाव करते समय अपने मत का सोच-समझ कर प्रयोग किया जाए।

राष्ट्र-प्रमुख का व्यक्तित्व कैसा हो ?

ऋग्वेद के अनुसार उसमें (राष्ट्र प्रमुख में) क्षात्र-शक्ति और उत्कट तेज हो- **तस्मिन् क्षत्रमभवत त्वेषमस्तु** (ऋग्वेद ५,३४,९)। यजुर्वेद (१०,१७) का निर्देश है कि वह अग्नि के तेज, सूर्य की कान्ति तथा इन्द्र के पराक्रम से युक्त हो- **(अग्नेर्भाजसा, सूर्यस्य वर्चसा, इन्द्र-स्येन्द्रियेण)**। तेजस्वी होने के लिये शासक को संयमी होना चाहिए। यजुर्वेद (९,२२) का वचन है- **इयं ते राड्यन्तासि यमनः।** अर्थात् यह तुम्हारा राष्ट्र है तुम इसके नियन्ता हो और स्वयं भी संयमी हो। ऐसे संयमी राष्ट्रनायक को समस्त जनता चाहती है- **विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु**

(ऋ.१०,१७३,१)। यजुर्वेद (१२,११७) का कथन है- **"सम्राड् एको विराजति"** अर्थात् संयमी-तेजस्वी राष्ट्र-प्रमुख अकेला ही चमकता है। भारतीय संस्कृति के वैतालिक (चारण) महाकवि कालिदास ने रघुवंश के राष्ट्र-नायकों के व्यक्तित्व का एक प्रेरणाप्रद शब्द-चित्र उपस्थित किया है- **रघूणामन्वयं वक्ष्ये-**

शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।

रघुवंश महाकाव्य १-८

अर्थात् मैं कालिदास उन रघुवंशीय शासकों का वर्णन करता हूँ जो शैशव में विद्याभ्यास करते थे, यौवन में गृहस्थाचार, वृद्धावस्था में मुनियों जैसा जीवन व्यतीत करते और अन्त में योग से शरीर त्याग किया करते थे। महाराजा दिलीप के व्यक्तित्व का दर्शन वे इस श्लोक में करते हैं-

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः।।

(रघुवंध, १-१३)

अर्थात् चौड़ी छाती वाले, बैल के सदश पुष्ट कन्धों वाले, शालवृक्ष की तरह ऊँचे-लम्बे दिलीप में मानों क्षात्रधर्म साक्षात् मूर्तिमान् था। आज तो ५६ इञ्च की छाती का भी मजाक उड़ाया जाता है, यह कैसी बिडम्बना है! ऋग्वेद (१-५४-८) के अनुसार उसका (नेता का) पराक्रम और उसकी बुद्धि अनुपम होनी चाहिए-

"असमं क्षत्रमसयमा मनीषा"

अर्थात् उसके समान केवल वही एक हो। अनन्वय अलंकार का सटीक उदाहरण हो।

वैदिक परम्परा में शासक-शासित सम्बन्ध-

सनातन वैदिक परम्परा में शासकों का प्रजा के साथ आदर्श संबध था। ऋग्वेद (१०,१७३,१) में वचन है कि- हे राजा हम तुम्हें चुन कर लाये हैं तुम स्थिर रूप से राज्य का शासन सम्भालों (आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः)। और, राजा के लिए प्रजा उसका अभिन्न अंग होती थी। तभी तो यजुर्वेद (२०-८) में कहा है- **विशो मेऽङ्गानि सर्वतः**। राजा और प्रजा के इस अटूट सम्बन्ध का निर्देश हमें यजुर्वेद (२०-९) के इस मन्त्र में मिलता है - **"विशि राजा प्रतिष्ठितः"** अर्थात् राजा प्रजा में प्रतिष्ठित होता है, राजा का आधार प्रजा है। क्योंकि प्रजा ही उसे चुनती है। जो शासक प्रजा की महत्त्वाकाक्षाओं की पूर्ति करता है प्रजा उसके सामने स्वयं झुकती है, उसकी निर्दिष्ट नीतियों का अनुसरण किया करती है- **तस्मै विशः स्वयमेवानमन्ते**

(ऋग्वेद ४-५०-८)।

राष्ट्रनायक से जनता की अपेक्षाएं-

सनातन वैदिक परम्परा में राष्ट्र के नायक का चुनाव करते समय सावधानी बर्तने की आवश्यकता पर बल दिया जाता रहा है। राष्ट्र के हित में ऐसे व्यक्ति का चुनाव करने का निर्देश है जो जनता की दृष्टि में इस कसौटी पर पुरा-पूरा खरा उतरता हो-

१. जो नेता राष्ट्र के चहुँमुखी विकास का संकल्प लेता हो। ऋग्वेद (१०.१८०.३) के मन्त्र में इसका

यह उदाहरण द्रष्टव्य है- **उरुं देवेभ्यो अकृणोरुं लोकम्**। अर्थात् राजा इन्द्र ने विद्वानों के लिये विशाल क्षेत्र बनाया। रामायण और महाभारत के काल में तथा इसके बाद समुद्रगुप्त आदि सम्राटों के काल में बृहत्तर भारत की सीमाओं का विस्तार काबुल-कन्धार तथा वर्मा आदि भूभागों तक रहा है। आज भी जो राष्ट्र नेता भारत माता के अखण्ड स्वरूप के लिए दम भरता हो, वही राष्ट्र के शासन का अधिकारी है। देश की जनता के नैतिक विकास के लिए यज्ञ-याग-योग के द्वारा जो प्रयत्नशील हो। भारत की वैदिक सांस्कृतिक, धार्मिक परम्पराओं की रक्षा और इसके लिए देश-विदेश में सतत कार्यरत संस्थाओं की सर्वविध सहायता करके ऐसी संस्थाओं का प्रोत्साहन करने वाला ही राष्ट्र का मुखिया होना चाहिए। आध्यात्मिक-धार्मिक विकास के साथ-साथ देश में कृषि और उद्योग के क्षेत्र में विकास को तीव्रता प्रदान करने वाला ही योग्य नेता हो सकता है। देश में आवागमन तथा व्यापार के क्षेत्रों में विकास का संकल्प उठा कर जो जनता के सामने आये उसी को अपना बहुमूल्य मत देकर सम्पूर्ण राष्ट्र का कल्याण हो सकता है। ऋग्वेद (८.५३.६) का निर्देश है कि जो जनता की श्री वृद्धि करे (**कृधि प्रजास्वाभगम्**) वही नेता राष्ट्र का सच्चा नायक है।

२. जिसका अपना आचरण वेदानुकूल हो, जो **मन्त्रश्रुत्यं चरामसि** का अनुयायी हो ऐसे **धर्मकृते, विपश्चिते** (ऋ. ८.९८.१) महान् व्यक्तित्व को ही राष्ट्रप्रमुख का पद मिलना चाहिए।

३. उसके नेतृत्व में यजुर्वेद की भाषा (यजु. ११.२८) में **शिवं प्रजाभ्यः** अर्थात् प्रजा की कल्याणकारी योजनाएं बनें। जनता के कल्याण की कामना से जो जन-जन के पास जावे (**विशं विशं हि गच्छथः** सामवेद साम. ७५३)

४. जो देशहित में आर्थिक परिवर्तन करते समय धनकुबेरों का ऋग्वेद (१.५५.३) के अनुसार वह बड़े-बड़े धनपतियों का भी शासनकर्ता होता हो (महो नृभ्णस्य धर्मणाभिरज्यसि)।

५. जिसके शासन में ऋग्वेद (४.५.८) के अनुसार विद्वान् वेदज्ञ सदा आगे रहते हों (**यस्मिन् ब्रह्म राजनि पूर्व एति**)।

६. ऋग्वेद (३.३०.६) के निर्देश (**जहिप्रतीचो अनुचः पराचः**) के अनुसार जो राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करने में समर्थ हो।

७. ऋग्वेद में कामना की गई है कि - (**मान्तः स्थुर्नो अरातयः** ऋ. १०.५७.१) हमारी प्रजा में छिपे हुए शत्रु न हो। अतः हे राष्ट्रनायक (**पाहि पश्चादुत वा पुरस्तात्** ऋ. ८.४८.१५) तुम आगे-पीछे सब ओर से हमारी रक्षा करो। यह सब करने में योग्य शासक (**यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य** ऋ. ९.५५.४) जो शत्रुओं को जीतता है, स्वयं अजेय है और शत्रुओं को यम के द्वार पहुँचा देता है, ऐसा ही नेता राष्ट्र का वेदसम्मत मुखिया हो सकता है और ऐसे ही शासक से जनता कह सकती है कि - **अभयं कृणुहि विश्वतो नः**,

ऋ. ३.४७.२ अर्थात् आप हमें चारों ओर से निर्भय करें।

८. जो राष्ट्र नेता नारी जगत् की रक्षा में ढाल बन कर खड़ा हो, 'तीन तलाक' जैसी कुप्रथा को समाप्त करने में जिसकी पूर्ण रुचि हो वही राष्ट्र के शासक पद का अधिकारी है। क्योंकि भारत में तो नारी को 'महिला' का सम्माननीय पद प्राप्त है। मनु का स्वष्ट निर्देश है कि- **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।** अर्थात् जिन घरों में नारियों का सम्मान किया जाता है वहाँ तो साक्षात् देवताओं का वास होता है।

९. जो देश में अश्वपति को आदर्श मानकर उसके समान ही शासन दे और गर्व से हाथ उठाकर कह सके कि-

न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो, न यमपतः।
ना ना हिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

-छान्दोग्य उपनिषद् ५,११,५

अर्थात् मेरे देश में कोई चोर-डाकू, कृपण, मद्यप (शराबी), अयाज्ञिक, मूर्ख और कुपथगामी पुरुष व स्त्री नहीं है।

१०. अथर्ववेद (१२.१.१) में कहा है कि- **सत्यं बृहदतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म, यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।** अर्थात् सत्य, ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्मज्ञान और यज्ञ ये सात तत्त्व हैं जो राष्ट्र को स्थिर रखते हैं। इनका नियम पूर्वक पालन करने में जिसकी श्रद्धा और भक्ति हो। वही राजा हो।

आज सभी राजनीतिक दलों के लिए वेदभगवान् का सर्वप्रथम प्रेरणाप्रद आदेश है कि उनके संरक्षण में कोई चोर न हो तथा कोई अपराधी और अपराधी को बचाने वाला भी न हो।

उपर्युक्त प्रकार से, सनातन वैदिक परम्परा में आस्थावान् तथा अच्छ-स्वच्छ भारत के निर्माण में सतत प्रयत्नशील, स्वच्छ छवि वाला जो भी महानुभाव है अथवा हो वही अपने भारत राष्ट्र का सफल मुखिया हो सकता है, उसी की सफलता के लिए हम सबको सहयोग करना उचित है।

- वी.वी.आर.आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।
मो. 9417831752

पुलित्तर पुरस्कार प्रणेता

- वीरेन्द्र नाथ भार्गव

वर्तमान विश्व में शीर्ष प्रतिष्ठित पुरस्कारों में नोबेल पुरस्कार, खेलकूद प्रतियोगिता में ओलम्पिक पदक तथा शीर्ष प्रतिष्ठित पत्रकारिता के निमित्त पुलित्जर पुरस्कार माना जाता है। 'पुलित्जर पुरस्कार' को पत्रकारिता, समाजसेवा, शिक्षा और अमेरिकी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए दिया जाता है। अनेक भारतीयमूल के अमेरिकी नागरिकों ने आदिनांक इस प्रतिष्ठित पुरस्कार को प्राप्त किया है। पुलित्जर का संक्षेप में निम्न परिचय प्रस्तुत है।

उन्नीसवीं शताब्दि में योरोपीय देश हंगरी में माको नामक एक छोटे गाँव में जोसेफ पुलित्जर का जन्म हुआ था। पुलित्जर के पिता हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में अनाज के एक छोटे व्यापारी थे। अतः पुलित्जर का पालन बुडापेस्ट में हुआ था। युवा होते ही १७ वर्ष की आयु से ही पुलित्जर ने सैनिक बनने का प्रयास किया। किन्तु दुर्बल नेत्र और पतला दुबला शरीर होने के फलस्वरूप ब्रिटेन, फ्रांस और आस्ट्रिया आदि देशों के सैनिक संगठनों ने उसे स्वीकार नहीं किया। हैम्बर्ग (जर्मनी) में एक दलाल की सहायता से वह अमेरिकी सेना में भर्ती होने के लिए समुद्री जहाज से रवाना हुआ। उन दिनों अमेरिका गृहयुद्ध (सिविल वॉर) से ग्रस्त था और सभी परिवारों से एक सदस्य के सेना में भर्ती होना अनिवार्य था। किन्तु अमेरिकी सरकार की ओर से वैकल्पिक व्यवस्था थी कि अनिवार्य पारिवारिक सदस्य के स्थान पर किसी आर्थिक निर्धन युवक को रुपयों की सहायता देकर भर्ती किया जा सकता था। यहाँ दलाल ने पुलित्जर को सेना में भर्ती का आश्वासन दिया तो साथ ही पाँच सौ डॉलर में पुलित्जर को बेच डाला। यात्रा के समय जहाज में पुलित्जर को बेचे जाने की भनक लग गई और अमेरिका के बोस्टन नगर के समीप जैसे ही जहाज पहुँचा तो पुलित्जर पानी में कूद गया और किनारे पहुँच कर येन केन न्यूयार्क नगर में सैनिक केन्द्र पर पहुँचा। वहाँ सैन्य अधिकारी से उसने दलाल के स्थान पर स्वयं पाँच सौ डालर की मांग रखी कि डॉलर मिल जाने के उपरांत ही वह नियुक्ति पत्र पर हस्ताक्षर करेगा। अधिकारी ने उसे ५०० डॉलर दे दिये और जैसे ही उसने हस्ताक्षर किया उसके तुरंत बाद अधिकारी ने लात-घूंसे-बूटों की ठोकर मार मार कर अपशब्दों (गालियाँ) की बौछार के साथ उसे अधमरा कर दिया कि वरिष्ठ से बात मनवाने की बहस करना सेना में अनुशासहीनता होने का दंडनीय कार्य है। सेना में रहते हुए कुछ मुठभेड़ों के अवसर पर अपने अधिकरी की गलती होने पर बहस करने पर उसे पुनः गालियाँ और लात घूसों की मार मिलती थी। एक वर्ष की सेवा के उपरांत उसे सेना से निकाल दिया गया। कुछ समय पश्चात् वह एक स्थानीय जर्मन समाचार पत्र 'वेस्तलीख पोस्त' में संवाददाता बन गया। सेंट

लुई नामक नगर में चोरी की एक प्रभावशाली घटना हुई जिसका समाचार लाने हेतु पुलित्ज़र को भेजा, साथ ही कुछ अनुभवी संवाददाता भी गए। सभी ने लौटकर सम्पादक को रिपोर्ट (सूचना) बनाकर दी जिनमें पुलित्जर की सूचना सटीक सही थी। इसकी निर्भीक और ईमानदार सेवा से समाचारों की साख बढ़ गई। कालांतर वह राजनेताओं के संपर्क में आया और उसे रिपब्लिकन दल की सदस्यता मिलने के साथ मिसौरी विधानसभा की सदस्यता भी चुनाव में विजयी होने से मिल गई। इन उपलब्धियों से प्रेरित होकर उसने वेस्तलीख पोस्त छोड़कर 'स्टाट्स जीतुंग' नामक दिवालिया पत्र खरीदा और उसे अपनी कड़ी मेहनत से चमका दिया। कुछ समय के पश्चात् उसने उसे २०,००० डॉलर में बेचकर शैक्षणिक योग्यता हेतु कानून सीखने के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा को सीखकर उसमें भी दक्षता प्राप्त की। मिसौरी विधानसभा में भाषण देने/सुनने से वह कुशल वक्ता भी बन गया। आजीविका हेतु उसने "सेंट लुई डिस्पैच" नामक समाचार पत्र को खरीदकर चलाया। उसने राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया जिससे उसके अनेक शत्रु बन गए। कालांतर उसने दुराचार और जुआ के अड्डों के समाचारों को प्रमुखता से छापा। आगे समाचारों में उसने नगर की सड़कों की स्वच्छता और उनके सौंदर्यीकरण के लिए आवाज उठाई। पुलित्जर की खूब प्रतिष्ठा बढ़ी। संयोगवश एक बार एक प्रतिष्ठित विरोधी वकील से उसके प्रधान संपादक की बहस हो गई। बहस में आवेश में आकर प्रधान संपादक के द्वारा उस वकील पर गोली चला दी गई और उस वकील की हत्या हो गई। फलस्वरूप पुलित्जर को भारी आर्थिक व्यय हुआ और बहुत बदनामी सहनी पड़ी। उसे धनहीन और बदनामी सहते हुए नगर छोड़कर जाना पड़ा। वह योरोप स्थित हंगरी में पुनः लौटने का मन बना कर न्यूयॉर्क शहर आया। आते समय सन् १८८३ में न्यूयॉर्क में किश्तों में उसे 'द वर्ल्ड' नामक समाचार पत्र खरीदने का अवसर मिला। उसने अब योरोप न लौटकर सच्चा लोकतंत्रवादी, जनसेवी, धोखाधड़ी, पाखडं को उजागर करने वाला और सार्वजनिक दुष्प्रवृत्तियों का विरोधी समाचार पत्र बनाया। मात्र तीन वर्षों में उसने पांच लाख डॉलर कमा लिए। उसने अपने लिए एक शानदार समुद्री आवास खरीद लिया। उसके प्रयासों से 'द वर्ल्ड' समाचार पत्र की प्रसार संख्या प्रातःकालीन तीन लाख तथा सायंकालीन चार लाख प्रतिदिन हो गई। सन् १९०३ में उसने २० लाख डॉलर की लागत से कोलंबिया में पत्रकारिता का विश्व का सबसे बड़ा शिक्षण महाविद्यालय खोला। सन् १९११ में पुलित्जर का निधन हो गया। उसने अपनी वसियत में लगभग बीस करोड़ रुपये की संपत्ति छोड़ी और उसमें पुलित्जर पुरस्कार दिये जाने की व्यवस्था/घोषणा की। पत्रकारिता के क्षेत्र में पुलित्जर तथा पुलित्जर पुरस्कार का आज भी विश्वव्यापी सम्मान है।

- 12, महावीर नगर, टोंक रोड़, जयपुर - 302018 (राज.)।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. १०
जनवरी ,२०२४

महाकवि कालिदास के नाटकों में परिचारिकाओं (दासियों) का जीवन

- उषा किरण

संस्कृत साहित्य के महिमा मण्डित सर्वश्रेष्ठ विभूति, भारतीय संस्कृति के आदर्श व्याख्याकार, विश्व साहित्य में संस्कृत साहित्य के ख्यातिप्राप्त मूलाधार, कविता कामिनी के अनुपम विलास, सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के अनुसन्धान में बहुमूल्य मणिरत्न प्राप्त कविकुलगुरु शिरोमणि कालिदास के नाटकों में वर्णित तत्कालीन परिचारिकाओं का जीवन शीर्षक प्रस्तुत शोधपत्र उनकी तीन सुप्रसिद्ध नाटकों-अभिज्ञानशाकुन्तलम्, माल-विकाग्नि-मित्रम् तथा विक्रमोर्वशीयम् पर आधारित है। इसमें मूलतः निम्न बिन्दुओं पर विशेष बल दिया गया है-

(क) कालिदास के नाटकों में वर्णित परिचारिकाओं का परिचय

(ख) कालिदास के नाटकों में वर्णित परिचारिकाओं का वर्ग (श्रेणी)

(ग) कालिदास के नाटकों में वर्णित परिचारिकाओं के क्रिया-कलाप

(घ) आधुनिक युग के सन्दर्भ में परिचारिकाओं की तुलना

(ड) निष्कर्ष

परिचय- परि उपसर्गपूर्वक चर् धातु से टाप् प्रत्यय लगाकर "परिचारिका" शब्द निष्पन्न होता है।[1] जिसका अर्थ है- सेविका, सहायिका, रक्षिका, पहरीदार, परिचारिका, दासी, स्त्री द्वारपाल इत्यादि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रतिहारी, परभृतिका, मधुकरिका, चतुरिका प्रथमा एवं द्वितीय तापसी नामक कई दासियों का वर्णन मिलता है। परभृतिका और मधुकरिका राजा दुष्यन्त के प्रमदवन की परिपालिका दासियाँ है। इसके अतिरिक्त प्रथमा और द्वितीया तापसी सर्वदमन की रक्षिका दासियाँ है। माल-विकाग्निमित्रम् नाटक में वकुलावलिका, मधुकारिका, कौमुदिका, समाहितिका, निपुणिका, जयसेना, मदनिका, ज्योत्सनिका, माधविका, चन्द्रिका आदि सेविकाओं का उल्लेख है।[2] वकुलावलिका अग्निमित्र की पटरानी धारिणी की दासी हैं। महाराज अग्निमित्र की दूसरी पत्नी इरावती की परिचायिका निपुणिका है और परिव्राजिका की सहायिका दासी समाहितिका है। इसमें प्रतिहारी और चेटी राजा दुष्यन्त की परिचायिका है। विक्रमोर्वशीयम् नाटक में तीन परिचारिकाओं का उल्लेख मिलता है-

निपुणिका, यवनी और परिजन।[3] निपुणिका

एक चतुर दासी है, वह काशी राजपुत्री देवी औशीनरी की सेविका है और यवनी महाराज पुरुरवा की सहायिका दासी है।

कालिदास के नाटकों में वर्णित परिचारिकाओं की श्रेणी (वर्ग)

क) चेटी- दैनिक कृत्यों में सहायिका दासियों को चेटी कहा जाता था। इनसे मित्रवत् व्यक्तिगत संवाद भी होता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में चतुरिका नामक सेविका चेटी श्रेणी के अन्तर्गत आती है। चेटी महत्वपूर्ण एवं गुप्त सूचनाओं से राजा को अवगत कराती थी।[४]

ख) प्रतिहारी- स्त्री (द्वारपालिका) परिचायिका को "प्रतिहारी" कहा जाता था, ये शिष्टाचारिणी एवं व्यवहार कुशल होती थी। वे सदा राजा की आज्ञाओं का अनुपालन क्रिया करती थी और द्वारों पर प्रहरी का कार्य पूरी निष्ठापूर्वक निभाती थी।

ग) परिपालिका दासी- मालविकाग्निमित्रम् में वकुलावलिका एवं निपुणिका तथा अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में वर्णित परभृतिका और मधुकरिका परिपालिका श्रेणी की दासियाँ है।[५]

घ) प्रतिराक्षिका दासी- आधुनिक युग के (अंगरक्षक) की भाँति रक्षिका दासियाँ के संप्रम अंक होती थी। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सप्तम अंक में प्रथमा तापसी एवं द्वितीया तापसी के रूप में रक्षिका दासियों का वर्णन मिलता है।[६] जो महर्षि कश्यप के आश्रम में रहने वाले सर्वदमन की रक्षिका दासी थी।

ड) शिल्पी दासी- मालविकाग्निमित्रम् में माधवसेन द्वारा भेजी गई मदानिका एवं ज्योत्सनिका नामक शिल्पी दासियों का उल्लेख है।[७]

च) मालिन- इस श्रेणी की दासी को "उद्यानपालिका" भी कहा जाता था। उद्यानपालिकायें प्रमदवन की सुरक्षा अर्थात् राजकीय उद्यान के रख-रखाव एवं देखभाल का कार्य करती थी। मालविकांग्निमित्रम् नामक नाटक में चित्रित मधुकारिका और कौमुदिका इसी श्रेणी की दासियाँ हैं।

कालिदास के नाटकों में वर्णित पचारिकाओं का क्रियाकलाप-

कालिदास के तीनों नाटकों के अध्ययन के उपरान्त हम देखते हैं कि परिचारिकाओं का जीवन विभिन्न उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों से युक्त था। जो सेविका जिस कार्य के योग्य होती थी उन्हें वैसा ही काम सौंपा जाता था। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् के पंचम अंक में चेटी राजा दुष्यन्त की अगुवाई करती है, उन्हें यज्ञशाला जाने का रास्ता दिखलाती है।[८] आगन्तुक महाराज से मिलने क्यों आए हैं ? उनसे कारण पूछकर महाराज को बतलाती है कि ऋषिगण आपके अच्छे आचरण से प्रसन्न होकर आपको धन्यवाद देने आए हैं।

प्रतिहारी राजप्रासादों के प्रमुख प्रवेश द्वारों पर नियुक्त होती थी और आने-जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर विशेष ध्यान रखती थी। वे सदा राजा की आज्ञाओं का अनुपालन किया करती थी। मालविकाग्रिमित्रम् में प्रतिहारी राजा और

महारानी के मध्य संवादसूत्र की भांति कार्य करती है। प्रतिहारी किसी भी अज्ञात आगन्तुक के मुख-मण्डल की भावभंगिमा को देखकर मन के भावों को समझने में पारगंत है। तभी वह ऋषिकुमारों के प्रसन्नमुख देखकर अनुमान लगा लेती है कि आशंका की कोई बात नहीं है। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में प्रतिहारी सदैव महाराज दुष्यन्त का हित चाहती है और उनके व्यक्तित्व से भी सम्पूर्णरूप से परिचित है। जैसे- धर्म पर महाराज की कैसी दृढ आस्था है ? वे धर्म-अधर्म पर कैसा विचार करते हैं? इत्यादि। प्रतिहारी राजा दुष्यन्त के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखती है। जब राजा अधिक व्याकुल एवं अश्रान्त हो जाते हैं तो प्रतिहारी उन्हें विश्राम कराने शंयन कक्ष तक ले जाती है। वह बिना आधार के कोई तर्क नहीं देती है। षष्ठ अंक में प्रतिहारी अपने संरक्षक महाराज दुष्यन्त के लिए जय हो, जय हो मंगलकामना करती है- "महाराज के समस्त अमंगल विनष्ट हों"[9] मालविकाग्निमित्रम् में प्रतिहारी दासी जयसेना सदा अपने कार्य को पूर्ण करने में लगी रहती है। जयसेना राजा अग्निमित्र को गुप्तमार्ग से प्रमदवन ले जाती है। इससे पता चलता है कि प्रतिहारी दासियों को महल के गुप्त एवं खुफिया रास्तों की जानकारी होती थी। तृतीय अंक में धारिणी की दासी और मालविका की सखी वकुलावलिका स्वयं अपनी प्रशंसा करती हुई कहती है कि "घर्षण से अधिक सुगंध देने वाली मैं स्वभाव से चतुर और विपत्ति आने पर अपने धैर्यबल से अधिक ज्ञान प्रकाशन कर सकती हूँ"[10] उसका उत्तर गणित के समान तर्कसम्मत होता था। वह कभी-कभी यथास्थान चाटुकारिता भी करती है।

परिपालिका दासी माँ के समान बच्चों का पालन-पोषण एवं देखभाल करती थी। उसका अपने संरक्षक स्वामी एवं स्वामिनी से घनिष्ठ संबंध होता था।

महाराज अग्निमित्र के प्रमदवन की उद्यानपालिका मधुकरिका प्रत्येक पेंड़-पौधों का ध्यान रखती है। तभी वह महारानी से निवेदन करती है कि स्वर्णाशोक वृक्ष में अभी तक फल नहीं आया है, उसके फूलने का उपाय किया जाना चाहिए। इससे पता चलता है कि उद्यानपालिकायें अपने कार्य के प्रति गम्भीर थी। ये प्रमदवन में नियुक्त होती थी। मालविकाग्निमित्रम् में पंचम अंक के आरम्भ में मालिन का प्रवेश होता है। वह उद्यान में सब घासपात को साफ करती है और सुनहरे अशोक वृक्ष के पेड़ को ठीक ढंग से बाँधती है। तत्पश्चात् वह क्रुद्ध महारानी को अशोक के फूलने का समाचार देने जाती है।[11]

आधुनिक युग के सन्दर्भ में परिचारिकाओं का तुलना- महाकवि कालिदास के नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मुख्यतः इनमें राजमहलों में कार्यरत परिचारिकाओं के जीवन के विषय में ही वर्णन मिलता है। घरेलू सेविकाओं की समाज में क्या स्थिति थी? यह जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है। परन्तु राजमहलों

में उनके द्वारा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किए जाते थे।

तत्कालीन समाज में दासियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। सहायिका एवं परिपालिका दासियाँ तो परिवार के सदस्य समान थी। दासियों के प्रति उनके संरक्षक मित्रवत् व्यवहार करते थे। विपत्तिकाल में वे अपने स्वामी को सहयोग करती थी। आज आधुनिक सम्भ्रान्त परिवार में घरेलू दासियों को अपने समान नहीं समझा जाता है। परन्तु आज वे हमारे लिए अनिवार्य आवश्यकताओं में शामिल हैं। सम्प्रति घरेलू परिचारिकाओं का शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न अधिक होता है।

तत्कालीन सेविकायें राजरहस्य (भेद) की बातें जानकर भी अपने संरक्षक के हित के लिए गुप्त रखती थी। विक्रमोर्वशीयम् नाटक के द्वितीय अंक में निपुणिका मन ही मन कहती है कि "मैंने महाराज के रहस्य का भेद पा लिया"। कालिदास के नाटकों में स्त्री द्वारपाल प्रहरी का भी कार्य करती थी। आज इससे मिलता-जुलता Home Guard का कार्य केवल पुरुष ही करते हैं। कालिदास के नाटकों में राजतंत्र व्यवस्था थी, आज लोकतंत्र व्यवस्था है। घरेलू सेविकाओं को आज कानूनी अधिकर प्राप्त हैं। राजतंत्र व्यवस्था में सहायिकाओं को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। तत्कालीन दासियाँ अपने कर्त्तव्य के प्रति अधिक जागरुक थी। आज की तुलना में उस समय उनका शारीरिक एवं मानसिक शोषण नगण्य सा ही प्रतीत होता था। मालविकाग्निमित्रम् नाटक के तृतीय अंक में समाहितिका मधुकरिका से कहती है कि "तुम्हें सज्जन लोगों की सेवा करने का उत्तम फल मिले।"[१३] प्रतिहारी भी इरावती से पंचम अंक में कहती है कि परिज्ञात कार्य में अन्यथा करना उचित नहीं है। इन कथनों से प्रतीत होता है कि परिचारिकायें सेवा भावना से अपना कार्य सम्पादित करती थी। उनका विश्वास था कि निष्ठापूर्वक दूसरों की सेवा करने से पुण्य फल की प्राप्ति होती है। सेविका एवं स्वामिनी के मध्य सम्बन्ध बेहद अनुरागपूर्ण एवं स्नेहिल था। इसलिए वकुलावलिका स्नेहवश मालविका करती है कि "तुम तो मेरा ही शरीर हो" और अपने अनुराग से दूसरे के अनुराग को जानना चाहिए[१४]। (दासियाँ अपने स्वामी संरक्षक, आश्रित) का अभिवादन करती थी और उनके अभिनंदन में जयकार किया करती थी। उनके दृष्टिकोण में शिष्टाचार का उल्लंघन अपराध के समान था। पंचम अंक में निपुणिका इरावती से कहती है कि मैंने शिष्टचार का उल्लंघन करके आर्यपुत्र के साथ अपराध किया है।[१५] अत: महाकवि कालिदास ने उल्लंघन करके आर्यपुत्र के "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" "मालविका-ग्निमित्रम्" तथा "विक्रमोर्व-शीयम्" नामक नाटकों में परिचारिकाओं के जिन उदात्त मूल्यों का, उच्च विचारों, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सेवाभाव सम्पन्न उच्च आदर्शों का चित्रण किया है, वे आज के संदर्भ में बेहद अनुकरणीय एवं प्रासांगिक हैं।

आज हम अपने अधिकारों के प्रति जितने संवेदनशील हैं, शायद उतने अपने कर्तव्यों के प्रति नहीं हैं।

निष्कर्ष- इस प्रकार महाकवि कालिदास के नाटकों में चित्रित परिचारिकाओं का जीवन अत्यधिक सुखी एवं खुशहाल था। मालविकाग्निमित्र में शिल्पी दासियों का वर्णन है। माधवसेन अनेक बहुमूल्यरत्न, हाथी, घोड़े, शिल्पी-कन्याओं, दास आदि उपहार लेकर महाराज अग्निमित्र के पास भेजता है। आधुनिक युग में महिला शिल्पकार नहीं के बराबर है। शिल्पी दासियों का आदान प्रदान किया जाता था। दोलागृह, मंगलगृह, अन्तःपुर, समुद्रगृह, मेघपरिछन्द महल, आदान-प्रदान किया जाता था। मणिहर्म्य, रनिवास तथा विमानछन्द महलों में परिचारिकाओं का बेरोक-टोक आना-जाना था। सेविकाओं के रूप में परिचारिकायें अपना महत्वपूर्ण योगदान देती थीं।

- ग्राम-महुआ टोली, महिलौंग, टाटीसिलवे,
जिला-राँची - 835103 (झारखण्ड) फोन - 8210750742

१. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक, पृ. १२९२
२. कालिदास, मालविकागिममित्रम्, व्या. रमाशंकर पाण्डेय, चौरखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ. ४४ (भूमिका भाग)
३. कालिदास, विक्रमोर्वशीयम्, व्या. रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, पृ. २८ (भूमिका, स्त्री का परिचय)
४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कालिदास, व्या. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ. ७६ (भूमिका भाग)
५. तत्रैव, पृ. ३८२-३८३
६. कालिदास, मालविकाग्निमित्रम्, व्या. रमाशंकर पाण्डेय, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, पृ. ५५ (भूमिका, स्त्री पात्र परिचय)
७. अभिज्ञानशकुन्तलम्, पृ. ३००
८. तत्रैव, पृ. २२८
९. तत्रैव, पृ. ३३७, ३३९, ३४४
१०. मालविकाग्निमित्रम्, पृ. ९०
११. तत्रैव, पृ. १४६
१२. विक्रमोर्वशीयम्, पृ. ३८
१३. मालविकाग्निमित्रम्, पृ. ६२
१४. तत्रैव, पृ. ८०
१५. तत्रैव, पृ. १८३

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

रामचरितमानस में राम राज्य की संकल्पना

- किशोर राय (शोधछात्र)

गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित-मानस भक्तिकाल के काव्य ग्रन्थों में एक महत्त्वपूर्ण देन है जिसका महत्त्व सर्वत्र देखने को मिलता है। यह महाकाव्य १६ वीं शताब्दी में लिखा गया है, जिसकी भाषा अवधि है। तुलसीदास जी ने ''रामचरितमानस'' को दोहों एवं चौपाइयों से सम्पन्न किया है। रामचरितमानस अर्थात् राम के चरित्र, कर्तव्य, निष्ठा, सुख-दु:ख से परिवेष्टित जीवन है जो मानव के मानस पटल पर सर्वदा नक्षत्र के भाँति उज्जवल रहता है। इस काव्य के नाम से यह ज्ञात होता है, कि राम के चरित्र से जुड़े प्रत्येक पक्ष का विवेचन किया गया है। रामचन्द्र जी इस काव्य के नायक और नायिका के रूप में जनकपुत्री सीता जी है। इस महाकाव्य के मूल उपजीव्य ग्रन्थ आदि कवि वाल्मीकि जी के द्वारा विरचित वाल्मीकीय रामायण है। इस आदि काव्य को अवलम्बन करके रामचरितमानस को सात काण्डों में विभक्त किया गया है। यह केवल अवधि भाषा का महाकाव्य नहीं अपितु हिन्दी भाषा का भी महाकाव्य है। यह केवल उत्तर भारत के लोगों मानस पटल पर ही व्यापक प्रभाव नहीं रखता अपितु समग्र भारत वासियों पर इसका प्रभाव है जो साहित्यिक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पक्षों से जुड़ा है।

हम सब हिन्दू धर्मावलंबी मनुष्य के मन में एक धारणा उभर कर सामने आती है कि राम राज्य में कितना अच्छे सुशासन था। राज्य के सारे लोग खुश थे किसी से कोई लड़ाई, झगड़ा, चोरी, डकैती या विद्वेष की भावना नहीं थी। राज्य के सभी लोग हर एक प्रकार से सुखी थे। ऐसा हमने दादा, दादी, पण्डित जी और गुरु जनों के मुख से सुनते आये हैं। राम राज्य की बात विगत कुछ वर्षों से बहुत चर्चा में है जो कि राजनैतिक दल वोट से पहले सभा में ऐसी प्रतिश्रुति देते हैं कि यदि आपलोग हमें अपनी बहुमूल्य वोट देकर सत्ता में लायेंगें तो हम राम राज्य की स्थापना करेंगे। राम राज्य की स्थापना पुन: सम्भव है कि नहीं यह तो विद्वत् समाज में प्रश्न चिन्ह ही है फिर भी हम आशा तो अवश्य कर सकते है कि भारत में पुन: राम राज्य की स्थापना हो। राम राज्य में ऐसा क्या था ? जो लोग सर्वदा आशा करते हैं। तो आइए हम राम राज्य के विषय में किन्हीं बिन्दुओं पर विचार करते है-

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।।[1]

भगवान् मनु के द्वारा अयोध्या नाम की

नगरी को बसाया गया था जो समस्त जगत् में विख्यात है। रामचन्द्र जी सिंहासन में आरूढ़ होने के पश्चात् अयोध्या नगर वासियों के सेवार्थ कार्य प्रारम्भ करते हैं। एक ऐसी सुशासन की व्यवस्था करते है जो सब के हितार्थ में था, तभी तो अयोध्या वासी सभी ओर से सुखी थे। राम राज्य का विस्तृत वर्णन रामचरितमानस के उत्तर काण्ड में मिलता है। राम राज्य के विभिन्न पक्षों को गोस्वामी जी नें पाठक वृन्दों के सामने अति सहज भाषा में प्रस्तुत किया है-

वरनाश्रम निज-२ धरम निरत बेंद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग।।[२]

राम राज्य में प्रत्येक मनुष्य वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने वर्णानुसार कार्य करते थे। चारों आश्रम के ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का पालन आयु के अनुसार करते थे। वेद मार्ग का अनुसरण करते थे। सभी सुखी थे, न कोई भय, न कोई रोग, न ही शोक था। **स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।।[३]**

वाल्मीकीय रामायण में भी ऐसा उल्लेख किया गया कि सभी अपने कर्म को करते हुए खुश थे।

निरामया विशोकाश्च रामो राज्यं प्रशासति।[४]

रामचन्द्र जी के राज्य में किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार के रोग व्याधि नहीं थी तथा न किसी प्रकार की शोक की छाया थी।

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहि काहि व्यापा।।
सब नर करहि परस्पर प्रीती।
चलहि स्वधर्म निर त श्रुति नीति।।[५]

अयोध्या वासियों के मध्य किसी प्राकर के कोई शारीरिक रोग से ग्रस्थ नहीं था। तीनों प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिदैविक,आधिभौतिक)- **दुःख त्रयविघातात्**[६] दुःखों से अयोध्या वासी मुक्त था, देवता तथा भूत, विशाचादि के प्रकोप से दूर था। प्रत्येक व्यक्ति परस्पर प्रेम भाव रख़ता था। सभी अपने धर्म का पालन वेदोक्त वचनों के अनुसार करते थे।

न व्याधिजं भयं चासीद् रामो राज्यं प्रशासति।[७]

वाल्मीकि जी कहते है राम राज्य में रोग का भय नहीं था।

सर्वे लक्षणसम्पन्नःसर्वे धर्म परायणाः[८]

रामायण में लिखा गया कि सभी लोग सारे लक्षणों से युक्त धर्म में नियुक्त थे। सभी व्यक्ति मर्यादा में रह कर धर्म का पालन करते थे। जैसे वेदोक्त वाणी में कहा गया है- **"संगच्छध्वम् संवदध्वम्-"**[९] हम सब एक साथ चलें, हम एक जैसे बोलें सब की भावना एक जैसी हो।

सब उदार सब पर उपकारी।
बिप्र चरण सेवक नर नारी।।
एक नारि ब्रतरत सब झारी।
ते मन वच क्रम पति हितकारी।।[१०]

इस राज्य में सब एक दूसरे के उपकार करते

थे। प्रत्येक व्यक्ति परोपकार की भावना से ओत-प्रोत था। विद्वान ब्राह्मणों का सम्मान होता था उनकी आज्ञा का पालन होता था। अयोध्या नगर का प्रत्येक व्यक्ति एक नारी से संतुष्ट था। मानो ठीक श्रीरामचंद्र का अनुकरण करता था। इस नगर की नारी सर्वथा अपने पति के हित साधन में लगे रहती थी।

विधु मही पुर मयुखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मांगे बारिद देही जल राजचंद्र के राज।।[११]

अयोध्या नगर वासियों को चंद्रमा अपनी किरणों से सबको शीतलता प्रदान किया हुआ रहता था। ठीक उसी प्रकार सूर्य देवता उतने ही तपते थे जितना अयोध्या वासियों की आवश्यकता हो, मेघ भी अयोध्या वासियों की सेवार्थ आवश्यकता अनुसार बरसते थे।

कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः।।[१२]

रामायणकार कहते हैं अयोध्या वासियों के लिए उनकी इच्छा अनुसार वर्षा होती थी, वायु का बहना भी सुखद्रायक प्रतीत होता था। सुमन वाटिका सब ही लगाएं-

सुमन वाटिका सबहि लगाई
विविध भांति करि जतन बनाई।
लता ललित बहु जाति सुहाई
फुलही सदा बसंत की नाई।।[१३]

किसी भी नगर की सुंदरता झलकती है- उस नगर की सुसज्जित फूलों की वाटिका, पेड-पौधे और भवन इत्यादि की इस नगर में कमी नहीं थी। परिश्रम से मालाकारो ने लता और विभिन्न पुष्प वाटिका से ऐसा तैयार किया था मानो सदा बसंत काल के जैसा प्रतीत होता था।

आधूय शाखाः कुसुमपद्रुमाणां
स्पृष्ट्वा च शीतानलसरयूतरङ्गान्।।[१४]

महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य में अयोध्या के विषय में वर्णन करते हुए कहते है कि इस नगर में सुन्दर पुष्पों से वृक्ष वाटिका विराजमान थी। झुके हुए वृक्ष की शाखा मानो सरयू नदी के जल स्पर्श कर रही हो।

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।।[१५]

अयोध्या के राज मार्ग सुदीर्घ और मजबूत हैं, जो अयोध्या नगर की शोभा को बढ़ाते हैं।

प्रसादैः रत्नविकृतैः पर्वतैरुपशोभिताम्।।[१६]

वाल्मीकि जी ने अपने ग्रन्थ 'रामायण' में लिखा कि अयोध्या के प्रासाद सोने, चाँदी, मणियों और रत्नों से निर्मित थे जो पर्वत के जैसे समान ऊँचे-ऊँचे थे। जिससे अयोध्या नगर का मान-सम्मान सर्वदा वर्धयमान था।

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बांधे घाट मनोहर स्वल्यं पंक नहिं तीर।।[१७]

अयोध्या नामक नगर सरयू नदी के तट पर बसा है। प्राचीनकाल से नदी का बड़ा महत्त्व रहा है। इस नदी का जल अमृत तुल्य है, जो बिल्कुल शुद्ध और पवित्र है। इसकी गंभीरता भी बहुत है। इस नदी के तट पक्के और मजबूत है जो पत्थरों से बांधे गये है। साफ-सुथरा तथा कहीं भी कीचड़

नदी नहीं दिखता था। इस प्रकार के घाट को देखेते ही मन मोहित हो जाता है।

निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्।[१८]

सरयू के तट पर बसे अयोध्या नगर बहु प्रकार के धन-धान्य परिपूरित था। सभी नगर वासियों ने कभी आर्थिक संकटों का सामना नहीं किया है।

नहि दरिद्र कोउ दु:खी न दीना।

नहि कोउ अबुध न लांछन हीना।।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।

सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी।।[१९]

राम राज्य में न कोई दरिद्र न कोई दु:खी और न कोई अज्ञानी व्यक्ति था। सभी गुणवान, ज्ञानवान और कृतज्ञता परायण व्यक्ति थे और किसी के भीतर छल कपट की भावना नहीं थी। **नरास्तुष्टाः धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः**[२०] वाल्मीकि जी लिखते हैं- इस नगर में सभी अपने धनों से जो उनके पास हे या जो कमाए हुए धनों से संतुष्ट थे, वे सत्यवादी थे, कुटुंबादि परिजनों का बड़ा आदर और सम्मान के साथ सत्कार करते थे। **नित्यं प्रमोदिताः सर्वे यथा कृते युगे तथा।**[२१] महर्षि जी और भी कहते हैं कि अयोध्यावासी सर्वदा आनंद में रहते थे जैसे सती युग में मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करते थे।

दंड जतिह कर भेद नर्तक समाज।

जीतहु मनहि सुनिओ अस रामचंद्र के राज।[२२]

राम राज्य में किसी प्रकार चोर, डाकू का भय नहीं था इसलिए 'जीतो' शब्द शत्रु के लिए व्यवहार न होकर मन को जीतने के लिए प्रयोग हुआ है। 'दंड' शब्द सन्यासियों के हाथ में रहने वाले दंड (लाठी) के लिए ही होता था। भेद जो अलग-अलग ताल सुर के लिए ही प्रयोग किया गया है। **दंड एव वरो लोके पुरुषस्य मे मतिः।**[२३] रामायण में कहा गया 'अकृतज्ञ' पुरुषों के लिए दंड का प्रयोग हितकारी साधन होना माना गया है।

उपरोक्त वर्णन से हम क़ह सकते हैं कि राम राज्य में नगर वासियों के लिए राम जी ने अपने अथक प्रयासों के माध्यम से नगर वासियों को दु:खों से दूर रखा था तथा अयोध्या वासियों ने कोई असुविधाओं का अनुभव नहीं किया। राज्य के राजा राम जी ने नगर नियोजन व्यवस्था इस प्रकार की थी जो प्रत्येक व्यक्ति उसका सदुपयोग करते थे। उत्तररामचरित में भवभूति कहते हैं-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मूर्छतो नास्ति मे व्यथा।।[२४]

मैं अयोध्या वासियों के लिए या प्रजा पालन के लिए प्रत्येक प्रकार के सुख सुविधाएं त्यागने के लिए तैयार हूँ। यहां तक मैं अपनी प्राणप्रिया सीता का परित्याग करने में किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं है। मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम के समान ऐसे शासक और कोई नहीं और न कोई होगा। अपने आप को किसी स्वार्थ में लिप्त न करके प्रजा के हितार्थ सर्वदा कार्य करते थे।

रामो विग्रहवान् धर्म-साधु-सत्य-पराक्रमः।

राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः।।[२५]

राजा राम जी सत्य और पराक्रम के साक्षात् धर्म की प्रतिमा तथा सज्जन पुरुषों में पुरुषोत्तम है। जैसे सभी देवों के राजा इंद्र जी है ठीक राम जी भी इस अयोध्या वासियों का राजा है। मर्यादा पुरुषोत्तम जैसे राजा और अयोध्या नगर वासियों जैसी प्रजा हो तो रामराज्य की पुनर्स्थापना हो सकती है। कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन महाकाव्य उर्मिला में आदर्श राज्य की संकल्पना है जो इस प्रकार **विश्व विजय की चाह नहीं थी और न रक्त पिपासा थी। केवल कुछ सेवा करने की उत्कंठित अभिलाषा थी।** महामना श्री मदन मोहन मालवीय के शब्दों में रामचरितमानस में बतलाए हुए मार्ग हिंदू जाति को पुनः राम राज्य के सुख भोगने वाली बनाने में सर्वथा समर्थ हैं।

– वी.वी.आर.आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।

१. वाल्मीकि रामायण २.७
२. रामचरितमानस, ७.२०
३. वाल्मीकि रामायण- यु- १२८.१०४
४. वही, १२८.१०१
५. रामचरितमानस, ७.२०.१
६. सांख्य कारिका १
७. रामायण-यु- १२८.९८
८. वही, १२८-१०४
९. ऋग्वेद, १०.१०
१०. रामचरित. ७.२१.४
११. रामचरित. ७.२३
१२. रामायण - १.५.८
१३. रामचरितमानस, ७.२७.१
१४. रघुवंश, १६.३६
१५. रामायण, १.५-८
१६. वही, २.१५
१७. रामचरितमानस, ७.२८
१८. रामायण, २.५
१९. रामचरित. ७.१.१२
२०. रामायण १.६.७
२१. वही, १.१.९
२२. रामचरित ७.२२
२३. रामायण ६.२२.४९
२४. उत्तररामचरित १.१२
२५. रामायण ३.३७.१३

मंगलमय नव वर्ष

- अखिलेश निगम 'अखिल'

नया वर्ष हो, नया गान हो, नव कलरब हो, नव विहान हो।
जीवन में उल्लास सिन्धु हो, बुद्धि प्रखर हो, प्रबल ज्ञान हो।
संकीर्ण भाव की तोड़ दो कारा, उन्नति पथ पर सभी चलें,
नव युग में हो राष्ट्र चेतना, निज संस्कृति पर स्वाभिमान हो।।
विश्व जगन में राष्ट्र की, बने नई पहचान।
अखिल हमारी कामना, भारत बने महान्।।

सन्देश

योग स्वास्थ्य सम्बल सदा, भोग की खान।
'अखिल योग करिए सदा, होगा रोग निदान।।
वृद्धों की सेवा करें, उनको दें सम्मान।
नया वर्ष है कह रहा, 'अखिल' रहे नित ध्यान।।
सभी सुखी हों, स्वस्थ हों, निज संस्कृति आधार।
'अखिल' सभी उन्नति करें, वसुधा है परिवार।।
एक व्यक्ति एक पेड़ का, हो पावन अभियान।
जंगल में मंगल 'अखिल' होगा देश महान्।।
रक्षक बनकर पुलिस जन, 'अखिल' करें निज कर्म।
सच्ची सेवा भावना, जीवन का यह मर्म।।
जीवन में संकल्प लें, नशे को देंगे त्याग।
नया सूर्य होगा उदित, जाग मनुज अब जाग।।

- आर्थिक अपराध शाखा, तृतीय टावर, पुलिस मुख्यालय, प्लाट नं. 30, सेक्टर -7, सिग्नेचर बिल्डिंग, गोमती नगर विस्तार, लखनऊ - 226010

नारी

- स्नेह लता

नारी को कोमल मत समझो
नारी तो शक्ति स्वरूपा है।

वह गौरी है, शतरूपा है,
वह अष्टभुजा कल्याणी है।
रम्भा, उर्वशी, मेनका,
सीता, सावित्री, रूद्राणी है।।
उसकी वाणी में अमृत है,
उसकी भ्रू वंक कटारी है।
उसकी दृढ़ता के आगे हर,
विपदा भी डरकर हारी है।।
ममता की शीतल छाया दे,
नन्हें अंकुर उपजाती है।
बहना बन भैया के बचपन,
की स्मृति को महकाती है।।
बन प्रिया प्रेरणा स्त्रेत बने,
पत्नी बनकर सहभागी है।
उसके कदमों की रूनझुन से,
सजती सपनों की क्यारी है।।
नारी में ही वह शक्ति निहित,
नर की रचना कर सकती है।
नारी में ही वह भक्ति निहित,
नर-नारायण कर सकती है।।
इतिहास साक्षी नारी का,
जब कभी कहीं अपमान हुआ।
हिल उठा गगन धरती दहली,
तब महाप्रलय अभियान हुआ।।
अपने दृढ़व्रती मौन से भी,
रावण परास्त कर सकती है।
पांचाली खुले केश धरकर,
दुर्योधन से लड़ सकती है।।
जल में थल में, नभ में अपना,
नारी ने परचम फहराया।
है ऐसा कोई क्षेत्र नहीं,
नारी ने विजित न कर पाया।।
नव रूप, नवल रस, नवलय है,
ईश्वर की सर्वोतम कृति है।
सत शिव सुन्दर से रची हुई,
यह ब्रह्मा की मानस प्रति है।।

- 1/309, विकास नगर, लखनऊ (उ. प्र.)

मोक्ष

– देवेन्द्र कुमार मिश्रा

"मोक्ष के लिए आया हूँ गुरुवर" एक ३० वर्षीय युवक ने कहा।

"क्या-क्या छोड़कर आये हो" गुरु ने पूछा।

"शूट-बूट, घर-परिवार" युवक ने कहा।

"कपड़े बदलने से, स्थान परिवर्तन से कुछ नहीं होता। शूट-बूट की जगह भगवा पहनने से मकान की जगह कुटिया में रहने से क्या होता है? कपड़े और छत तो अब भी है। मन परिवर्तन होना चाहिए।" गुरु ने समझाया।

"संसार छोड़कर आया हूँ गुरुदेव"

" तुम तो जिन्दा हो। इसी धरती पर हो। संसार छोड़ना कैसे हुआ युवक। अच्छा और क्या छोड़कर आये हो।"

"माता-पिता, पत्नी-पुत्र, सबकुछ गुरुवर" शिष्य ने कहा।

"माता-पिता छोड़ने के लिए नहीं नालायक। सेवा करने के लिए होते हैं। पत्नी और पुत्र के प्रति अपने दायित्व छोड़कर भागने वाला कायर होता है। उसे न इस संसार में चैन मिलता हॅ और न उसके लिए अन्य किसी लोक में स्थान है।"

"किन्तु गुरुदेव पत्नी झगडालू है। माता और पत्नी में निरन्तर कलह से दु:खी होकर आया हूँ।"

"जीवन उतार-चढ़ाव का नाम है। रिश्तों में सामन्जस्य बिठाकर निभाना ही मनुष्य जीवन है। जब तुम पृथ्वी लोक के रिश्ते-नाते नहीं निभा पाये, तो तुम्हारे लिए तपस्वी जीवन व्यर्थ है। जाओ पहले जीवन की रामायण समझो। जीवन के प्रति अपने कर्त्तव्य निभाओ। वहीं से मोक्ष का मार्ग निकलता है।" गुरु ने कठोरता से कहा।

"किन्तु हे महात्मन्! ये तो बतायें, मोक्ष है क्या?"

"अपने निर्धारित कर्मों को ईमानदारी से निभाना ही कर्मयोग है और कर्मयोग से ही मोक्ष की राह निकलती है। आँख बन्द करके बैठने से मुक्ति नही मिलती। न सन्यासी का आवरण ओढ़ने से मोक्ष मिलता है। अपने माता-पिता की सच्चे हृदय से सेवा करो। पुत्र को श्रेष्ठ व्यक्ति बनाओ और पत्नी के लिए राम बनो, युवक" गुरु ने समझाते हुए कहा।

युवक ने बैचेनी से कहा– "किन्तु गुरु श्री पहले पत्नी को सीता तो होना चाहिए।"

"अपेक्षा मत रखो। तुम तो राम बनो। तुम राम बनोगे तो स्त्री सीता बनेगी ही। अपने में सुधार करो। किसी से कुछ बनने की उम्मीद मत रखो। तुम बनकर दिखाओ। तुम स्वयं को बदल सकते

हो। किन्तु संसार को नहीं। दूसरे को बदलने की जिद ही दु:खों का कारण है। यही मोक्ष का मार्ग है। कुछ भी त्यागने की जरुरत नहीं। जो छूटना है वो छूटना ही है छूटने की चिन्ता और खुशी से बाहर निकालो। अपने मनुष्य होने का मान रखो। मोक्ष की आड़ लेकर जीवन का अपमान मत करो। माता-पिता को छोड़कर भागने वाला नरकगामी होता है। पत्नी और संतान को त्यागने वाला सृष्टि को झुठलाने की कोशिश है। ये सब ईश्वर का अनादर है युवक।''

''फिर आप तप क्यों कर रहे हैं। क्यों आपने सन्यास धारण किया। गेरुए वस्त्र, पर्णकुटीर बनाकर इस एकान्त में क्यों आप ध्यान कर रहे हैं महात्मन'' युवक ने पूछा।

''हे युवक, माता-पिता बचपन में चल बसे विवाह मैंने किया नहीं। मैं किशोरवस्था में ही सन्यासी बन बैठा। सन्यास मेरी राह भी है और लक्ष्य भी। मैं किसी को छोड़कर नहीं आया। सन्यास का अर्थ है सारी दुनियाँ मेरा परिवार है। जब भूख लगी तो गृहस्थी के द्वार खटखटा दिया। मिला तो ठीक, फटकार मिली तो आगे बढ़ लिए, मन में बिना किसी द्वेष के। समस्त संसार मेरे लिए वन्दनीय है। समस्त संसार की स्त्रियाँ मेरी माता है। रिश्ता टूटा नहीं हैं। बल्कि रिश्तों का विस्तार ही सन्यास है। संसार के समस्त बालक मेरे पुत्र और समस्त बुजुर्ग मेरे पिता तथा सारे युवा मेरे बंधु हैं। यही सन्यास है। और एक तुम हो जो एक परिवार से भाग रहे हो। एक माँ, एक पिता, एक पुत्र, एक पत्नी को छोड़कर आ रहे हो। तुम तो सन्यासी बन ही नहीं सकते। सन्यास का आरम्भ गृहस्थ और माता-पिता की सेवा तो पूर्ण करो फिर सन्यास में आगे बढ़ना।'' गुरु ने हौले से हंसते हुए कहा। मानो युवक की मूर्खता पर हंस रहे हो।

''संसार बड़ा कठिन है गुरुदेव'' शिष्य ने अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा।

''कठिन संसार में सरलता के साथ जीना ही मनुष्य का मोक्ष की राह में पहला कदम है।'' गुरु ने सहज भाव से कहा।

''हे द्विज, एक की सुनूं तो दूसरा नाराज होता है। दूसरे की सुनूं तो तीसरा छूट जाता है। सब असंतुष्ट और शिकायतों से भरे हैं।'' शिष्य ने निराशा भरे स्वर में कहा।

''हे युवक! कांटा तभी बीच में आता है जब तराजू के दोनों पलड़े बराबर हों। जीवन की तराजू में दोनों पलड़े बराबर रखो। नाप-तौल सही होगी।''

''हमेशा तालमेल संभव नहीं''

''इसी का नाम जीवन है। तुम केवल प्रयास करो''

''और कोई रास्ता नहीं।''

''सारे रास्ते झूठे हैं। जो सामने है वही सच है। शेष मृगतृष्णा है। मरीचिका है। छल है। भटकाव है। ये तो वैसे ही हुआ कि स्वर्ग की चाह में व्यक्ति आत्मघात कर बैठे। इससे बड़ी

बेवकूफी क्या है?''

''हे विप्र श्रेष्ठ, क्या कोई ऐसा स्थान है जहां मृत्यु के बाद स्वर्ग या मोक्ष होता है।''

''ऐसा कोई स्थान नहीं पुत्र। सब कपोल कल्पनायें हैं, मन बहलाने के लिए। सच्चा मोक्ष और स्वर्ग तो जीते जी ही है। शांत मन ही स्वर्ग है। स्थिर मन ही मोक्ष है। मन में शांति अपने दायित्वों का श्रेष्ठता से निर्वहन करने से ही आती है।''

''मेरे लिए क्या आदेश है महात्मन''

''समस्या है तो समाधान ढूंढो। सतत् श्रेष्ठ कर्म करो। माता-पिता की सेवा करो। अपनी पत्नी को अपना आधा अंग समझकर उसके साथ जियो। संतान को उचित शिक्षा और संस्कार दो। जीवन को श्रेष्ठता की ओर ले जाओ। संतोष और शांति से हर कार्य करो। यही मोक्ष है। यही स्वर्ग है। सारे जगत् को अपना मानकर व्यवहार करो।''

''तो मुझे आज्ञा दीजिये अपनी अयोध्या जाने की''

''आज्ञा है पुत्र। किन्तु जीवन की रामायण में किष्किंधा और लंका भी आती है। इनसे घबराना मत। राह में कोई सुन्दर कांड भी मिलेगा।''

युवक की उलझन सुलझ चुकी थी वह अपने घर लौट गया।

- ए - 29, फर्स्ट फलोर, राजुल ड्रीम सिटी, अमखेरा रोड, जबलपुर - 482004 (म. प्र.)

संस्थान-समाचार

दान-

Sh. M.P. Bir, Vijay Nagar, Delhi.	1100/-
Model Town Ladies Club, Hoshiarpur.	10000/-
Sh. Rahul Sharma, Una Road, Hoshiarpur	1000/-
Charan Dass Malhan Charitable Trust, Hoshiarpur	21000/-
Sh. Virender Kumar Sharma, Hoshiarpur	1100/-
Sh. Suneel Sharma, Una Road, Hoshiarpur	1000/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

बधाई-

संस्थान के कर्मिष्ठ श्री किशोर चन्द जी के सपुत्र आयुष्मान् रजत ठाकुर का शुभ विवाह आयुष्मती शिखा के साथ दिनांक 7-12-2023 को होशियारपुर में संपन्न हुआ। नव-विवाहित दम्पती सुखी, स्वस्थ व सानन्द रहे, यही संस्थान के सभी कर्मिष्ठो की ओर से शुभकामना है। सभी की ओर से संबंधित परिवार को इस शुभ अवसर पर बहुत-बहुत बधाई।

पण्डितोऽपण्डितो वापि भुङ्क्ते दान-फलं नरः।
बुद्ध्यानपेक्षितं दानं सर्वथा तत्फलत्यत्र॥
महा. सुक्तिसुधा, पृ. 267

कोई भी व्यक्ति चाहे वह विद्वान् हो अथवा न हो, जीवन में किए गए दान का फल इहलोक या परलोक में अवश्य प्राप्त करता है। दान का इतना महत्त्व है कि यदि बिना दान की भावना से भी किसी को कुछ दिया जाता है तो ऐसे दान का भी फल प्राप्त होता है। अत: व्यक्ति को चाहिए कि वह जाने-अनजाने में कुछ न कुछ देता रहे।

Late Sh. Ved Parkash Malhan | Late Smt. Ram Piari Malhan | Late Advocate Charan Dass Malhan

प्रयोजक

सर्वश्री चरणदास मल्हन चेरिटेबल ट्रस्ट

३१-आर, माडल टाऊन,
होशियारपुर।

सेवितव्यो महावृक्षः फलशाखासमन्वितः।
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवारिता॥

चाणक्यनीतिशास्त्र, अवतरणिका, 90

व्यक्ति को चाहिए कि वह फल, शाखा इत्यादि से युक्त बड़े वृक्ष की सेवा करे क्योंकि उससे फल आदि की प्राप्ति होती रहेगी। यदि भाग्यवश उसमें फल न लगें तो, छाया तो मिलती ही रहेगी। तात्पर्य है कि जीवन में महान् व्यक्तियों की सेवा करनी चाहिए। उनके सम्पर्क में रहना चाहिए। उससे जीवन में बहुत लाभ प्राप्त होता है।

पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती शीला शर्मा

(पत्नी स्व. प्रो. नवल किशोर शर्मा)

(जिनका दुःखद निधन दिनांक 28-11-2023 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री सुधीर शर्मा, सुनील शर्मा, राहूल शर्मा

बी-2, एम.सी.एच. 32/1, ऊना रोड़,

होशियारपुर।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१२-२०२३ को प्रकाशित।